IAS

GS World

Committed To Excellence

PCS

खण्ड शिक्षा अधिकारी

(BEO)

पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी

Downloaded From
www.studymasterofficial.com

1. पर्यावरण

अर्थ एवं परिभाषा

प्रत्येक जीव का अपना एक विशिष्ट परिवेश अथवा माध्यम होता है, जिसके साथ वह लगातार पारस्परिक क्रिया करता रहता है तथा जिसमे वह अपना जीवन निर्वाह करता रहता है और जिसके प्रति वह पूरी तरह से अनुकूलित रहता है। दूसरे शब्दों में, पर्यावरण भौतिक, जैविक तथा रासायनिक दशाओं का योग है, जो पृथ्वी पर विद्यमान जीवन के सभी स्वरूपों को प्रभावित करता है। समग्र रूप में देखें, तो पर्यावरण जीवित पदार्थों के चारों ओर फैला वह स्थान है, जिसके साथ उनका सहजीवी संबंध होता है।

वस्तुतः पर्यावरण अध्ययन का संबंध हर उस प्रश्न से है, जो एक जीवित प्राणी को प्रभावित करता है। यह मूलतः एक बहुशास्त्रीय (Multidisciplinary) दृष्टिकोण है, जो हमारे प्राकृतिक जगत और मानव पर उसके प्रभाव को समग्रता में समझना सिखाता है। हमारे पर्यावरण में दैनिक जीवन के लिए आवश्यक अनेक प्रकार की वस्तुएँ और खनिज शामिल हैं और साथ में जलवायु एवं सौर ऊर्जा भी। ये प्रकृति के अजैविक (Abiotic) घटक हैं, जबकि प्रकृति के जैविक घटकों में सूक्ष्म जीवाणुओं समेत पेड़-पौधे और जीव-जन्तु शामिल हैं। पेड़-पौधे और जीव-जन्तु ऐसे विभिन्न जीवों के समुदायों के रूप में ही जीवित रह सकते हैं, जो अपने आवास में आपस में घनिष्ठ संबंध रखते हैं और जिन्हें विशेष अजैव दशाओं की आवश्यकता होती है।

प्रकृति के अजैव पक्षों और विशिष्ट सजीव जीवों की आपसी अभिक्रिया से ही विभिन्न प्रकार के पारितंत्रों (इकोसिस्टम) का निर्माण होता है। इनमें से अनेक सजीवों का उपयोग हमारे खाद्य संसाधनों के रूप में होता है।

- पर्यावरण की संरचना के अंतर्गत भौतिक तथा जैविक संघटकों को सम्मिलित किया जाता है।
- भौतिक पर्यावरण के अंतर्गत स्थलमण्डलीय, वायुमण्डलीय तथा जलमण्डलीय पर्यावरण का अध्ययन किया जाता है।
- जबकि जैविक पर्यावरण के अंतर्गत वानस्पतिक पर्यावरण तथा जन्तु पर्यावरण को शामिल किया जाता है।

पर्यावरण के अंगः-

पर्यावरण के अंतर्गत स्थलमंडल, वायुमंडल, जलमंडल और जैवमंडल शामिल होते हैं। प्रत्येक अंग स्वयं में एक-दूसरे के तत्वों को शामिल करता है और एक पृथक् अस्तित्व बनाता है, परंतु वे सभी एक-दूसरे के साथ घनिष्ठ रूप से अंतर्संबंध प्रदर्शित करते हैं।

पर्यावरण शब्द की उत्पत्ति फ्रेंच भाषा के 'Environner' शब्द से हुआ है जिसका अर्थ है - घिरा हुआ। अंतरसरकारी संगठन ओईसीडी (OECD) के अनुसार-पर्यावरण से तात्पर्य एक जीव के जीवन विकास और अस्तित्व को प्रभावित करने वाली सभी बाहरी स्थितियों की समग्रता से है। पर्यावरण संरक्षण अधिनियम-1986 के अनुसार, पर्यावरण हमारे चारों तरफ व्याप्त भौतिक एवं जैविक दशाओं और उनके साथ अंत:क्रियाओं का समुच्चय है।

पर्यावरण के तत्वः-

पृथ्वी सौरमंडल का अनोखा ग्रह है, क्योंकि केवल इसी पर विविध प्रकार की वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। पृथ्वी की इस विशिष्टता के पीछे कई कारक काम करते हैं। इनमें से एक महत्त्वपूर्ण कारक है- सूर्य से पृथ्वी की दूरी। सूर्य के निकटवर्ती ग्रह शुक्र और बुध की भाँति पृथ्वी न तो बहुत अधिक गर्म है और न ही बृहस्पति जैसे सूर्य से दूर के ग्रहों के समान अत्यंत ठंडी।

पृथ्वी के चारों ओर फैले वायुमंडल में ऑक्सीजन पाई जाती है। ऑक्सीजन सभी प्राणियों के जीवन के लिए अनिवार्य है। वायुमंडल पृथ्वी के धरातल को ताप की परमसीमाओं से बचाता है अर्थात् वायुमंडल के कारण पृथ्वी पर दिन और रात तथा गर्मियों और सर्दियों के तापमान में बहुत ज्यादा अंतर नहीं होता है। तापमान की इसी विशिष्टता के कारण पृथ्वी पर विशाल मात्रा में जल पाया जाता है। पृथ्वी पर तापमान में होने वाले परिवर्तनों के कारण जल ठोस और गैसीय अवस्थाओं में भी मिलता है। तापमान के परिवर्तन से ही जल का संचरण जलमंडल, स्थलमंडल और वायुमंडल के बीच होता रहता है। पृथ्वी पर जल के कारण ही विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधों और मनुष्य समेत अनेक जीव-जन्तुओं की विविध जातियों का विकास तथा वृद्धि संभव हो सकी है।

किसी प्रदेश विशेष में पाए जाने वाले पेड़-पौधे और जीव-जन्तु उस प्रदेश के भौतिक पर्यावरण पर आश्रित होते हैं। स्मरणीय है कि भौतिक पर्यावरण तथा जैव पर्यावरण एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। भौतिक पर्यावरण के परिवर्तन से जैविक पर्यावरण भी परिवर्तित हो जाता है। भौतिक तथा जैव पर्यावरण के तत्वों में सदैव कुछ-न-कुछ परिवर्तन होता रहता है।

जैवमंडल [Biosphere]:-

जैवमंडल सामान्य रूप से पृथ्वी की सतह के चारों ओर व्याप्त एक आवरण होता है, जिसके अंतर्गत वनस्पति तथा

Downloaded From www.studymasterofficial.com

पशु जीवन बिना किसी रक्षक साधन के संभव होता है। पृथ्वी के धरातल पर अनेक जीव निवास करते हैं, जिनमें से कुछ धरातल से थोड़ी ऊँचाई पर और कुछ धरातल से थोड़ी गहराई पर रहते हैं, वहीं कुछ जीव जल में निवास करते हैं। इन जीवों के निवास क्षेत्र को पर्यावरणीय दशाएँ नियंत्रित करती हैं। ऐसे विशाल या लघु क्षेत्र ही, जिसमें जीव निवास करते हैं, जैवमंडल का निर्माण करते हैं। इसका विस्तार सम्पूर्ण पृथ्वी पर भी हो सकता है और किसी लघु आकार के क्षेत्र में भी। जैवमंडल की संरचना विभिन्न विशिष्टताओं से युक्त है क्योंकि जैवमंडल से बाहर जीवन संभव नहीं होता है। यही कारण है कि पृथ्वी पर विविध प्रकार के जंतुओं एवं वनस्पतियों का अस्तित्व संभव हुआ।

जैवमंडल के गठन, संरचना तथा प्रभाविता को और अधिक स्पष्ट करने के लिए वायुमंडल में निहित विभिन्न परतों का अध्ययन आवश्यक है-

वायुमंडल (Atmosphere)

जीवों के अस्तित्व में बने रहने के लिए विभिन्न आवश्यक गैसें वायुमंडल से ही मिलती हैं। वायुमंडल जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वायु के सभी घटक सजीव जीवधारियों के लिए मूल उपापचयों के रूप में कार्य करते हैं।

वायुमंडल विभिन्न गैसों का एक आवरण है, जो पृथ्वी को चारों ओर से घेरे हुए है तथा गुरुत्वाकर्षण बल के द्वारा पृथ्वी से आबद्ध है।

जीवमंडल के लिए प्रभावी वायुमंडल 29 किलोमीटर की ऊँचाई तक माना जाता है। वायुमंडल में जलवाष्प की मात्रा भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर घटती जाती है क्योंकि भूमध्य रेखा के पास अधिक गर्मी पड़ती है। फलतः वहां जल का वाष्पन अधिक होता है, जबकि ध्रुवों की तरफ ऐसा नहीं होता है।

कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी हैं।

संरचना की दृष्टि से वायुमंडल का विस्तार लगभग 10,000 कि.मी. की ऊँचाई तक मिलता है, किन्तु वायुमंडल का 99 प्रतिशत भाग 32 कि.मी. तक सीमित है। वायुमण्डल को पाँच संस्तरों में वर्गीकृत करके देखा जा सकता है-

क्षोभमंडल (Troposphere)

यह वायुमंडल की सबसे महत्त्वपूर्ण परत है। इसकी औसत ऊँचाई 13 किलोमीटर है। इसी परत में आर्द्रता, जलकण, धूलकण, वायुधुन्ध तथा सभी मौसमी घटनाएँ होती हैं। इस मंडल में प्रति 165 मीटर की ऊँचाई पर 1°C तापमान घटता है तथा प्रत्येक 1 किमी. की ऊँचाई पर लगभग 6.5°C की कमी आती है। इसे सामान्य ताप पतन दर कहा जाता है।

समताप मंडल (Stratosphere)

क्षोभमंडल के ऊपर का भाग समताप मंडल कहलाता है। यह लगभग 50 किलोमीटर की ऊँचाई तक फैला है। यह परत बादलों एवं मौसम संबंधी घटनाओं से लगभग मुक्त होती है। इस मंडल में प्रारंभ में तापमान स्थिर रहता है, परन्तु 20 किलोमीटर की ऊँचाई के बाद तापमान में अचानक परिवर्तन आता है, ऐसा ओजोन गैसों की उपस्थिति के कारण होता है जो कि पराबैंगनी किरणों को अवशोषित कर ताप बढ़ा देती हैं। बादलों तथा मौसमी घटनाओं से मुक्त होने के कारण यह मंडल वायुयान परिचालन हेतु सुगम्य है।

मध्यमंडल (Mesosphere)

यह वायुमंडल की तीसरी परत है। यह समताप मंडल के ठीक ऊपर होती है। यह लगभग 80 किलोमीटर की ऊँचाई

Downloaded From www.studymasterofficial.com

तक फैली है। इसमें तापमान में अचानक गिरावट आ जाती है एवं तापमान गिरकर -100ºC तक पहुँच जाता है।

आयन मंडल (Ionosphere)

यह 80 से 400 किलोमीटर तक फैला है। रेडियो संचार इसी परत से संचालित होता है, वास्तव में पृथ्वी से प्रसारित रेडियो तरंगें इस परत द्वारा पुनः पृथ्वी पर परावर्तित कर दी जाती हैं।

बाह्य मंडल (Exosphere)

यह वायुमंडल की सबसे बाहरी परत है। इसकी ऊँचाई 640-1000 km तक होती है। यहां हाइड्रोजन तथा हीलियम गैसों की प्रधानता होती है।

जैवमंडल के लिए आवश्यक दशाएँ:-

जल- पृथ्वी की अद्वितीय विशेषताओं में से एक जल अपनी तीनों अवस्थाओं-ठोस, तरल और गैस अवस्था में पृथ्वी पर उपस्थित है। जीवन की अधिकांश जैव-रसायनिकी जल या H_2O के विशिष्ट लक्षणों पर ही केंद्रित रहती है। साथ ही जल तापमान परिवर्तन का प्रतिरोधी है अर्थात् यह ऊष्मा को धीरे-धीरे अवशोषित करता है और धीरे-धीरे ही छोड़ता है। इसकी तरल से गैस में परिवर्तन की क्षमता इसे जैवमंडल में अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता के साथ गति करने के लायक बनाती है। वायुमंडल में इसकी उपस्थिति पृथ्वी के धरातल से होने वाली विकिरण ऊष्मा के क्षय को मंद कर देती है, जिससे जैवमंडल को अपेक्षाकृत स्थिर तापमान पर रहने में सहायता मिलती है।

वायुमंडल (Atmosphere)

वायु का आवरण, जो पृथ्वी को चारों ओर से घेरे है, वायुमंडल कहलाता है। पर्यावरण के चार प्रमुख तत्वों में से वायुमंडल सबसे अधिक गतिशील है। रासायनिक रूप से, यह गैसों का एक संरक्षक आवरण है, जिसमें 79% नाइट्रोजन, 20% ऑक्सीजन, 0.04% कार्बन-डाइ-ऑक्साइड एवं अनेक गैसें शामिल हैं, जिनमें से कुछ विरल गैसें भी है। पृथ्वी के वायुमंडल का अधिकांश भाग उसके धरातल से चिपका या लगा हुआ है, जो 10-12 km की ऊँचाई से अधिक नहीं है। वायुमंडल सूर्य से आने वाली खतरनाक पराबैंगनी विकिरण को धरातल तक पहुँचने से रोककर एक अद्वितीय सुरक्षा चक्र का कार्य करता है, अन्यथा पृथ्वी पर जीवन असुरक्षित हो जाता। साथ ही साथ यह एक भीमकाय 'ऊष्मा कुण्ड' के रूप में कार्य करता है, जिसमें धरातल के निकट की ऊष्मा संरक्षित रहती है। सूर्य से प्राप्त होने वाली कुल ऊर्जा सामान्य रूप से पृथ्वी से अंतरिक्ष में वापस जाने वाली कुल ऊर्जा मात्रा के बराबर होती है, परंतु यह संतुलन अब मानव गतिविधियों के कारण भंग हो रहा है, जिसका कारण वायुमंडल में अतिरिक्त कार्बन-डाइ-ऑक्साइड (CO_2) का समावेश है।

जलवायविक दशाएँ

पृथ्वी के धरातल के ऊपर और नीचे जैवमंडल के विस्तार का सीमांकन जीवन के लिए सहायक अजैविक पर्यावरणीय दशाओं के द्वारा होता है। अजैविक या भौतिक पर्यावरण का तात्पर्य समस्त अजैविक पदार्थों से है, जैसे- भूमि, जल, वायु आदि। ध्यातव्य है कि ऊष्मा और जल की व्यापक गतिशीलता के फलस्वरूप पृथ्वी पर जलवायु की उत्पत्ति होती है। ये गतिशीलता कुछ क्षेत्रों में अन्य की अपेक्षा अधिक है। उदाहरणार्थ, भूमध्य-रेखीय क्षेत्रों में सालों भर सौर ऊर्जा की काफी मात्रा समान रूप से पहुँचती है, जबकि यह उत्तरी एवं दक्षिणी अक्षांशों में एक मौसम से दूसरे में काफी अंतर दर्शाती है, जिसका कारण पृथ्वी के अक्ष का झुकाव है। धरातल से बहुत अधिक ऊँचाई या गहराई पर वायु या जल अथवा किसी भी अजैविक पर्यावरणीय घटक की अनुपस्थिति जीवन के अस्तित्व को प्रतिबंधित करती है। यही जीवमंडल की सीमा का निर्धारण भी करती है। जीवमंडल के अजैविक अवयव हैं- स्थलमंडल का ऊपरी हिस्सा, वायुमंडल का निचला हिस्सा और जलमंडल।

सौर ऊर्जा

पृथ्वी पर सभी प्रकार की ऊर्जा का मूल स्रोत सौर ऊर्जा है। यही प्रकाश-संश्लेषण के लिए आधारभूत ऊर्जा प्रदान करता है, परंतु इसकी जीवन के लिए महत्वपूर्ण भूमिकाएँ भी हैं। आगत विकिरण का सिर्फ आधा भाग ही पृथ्वी के धरातल तक पहुँच पाता है, जबकि इसका 30% भाग अंतरिक्ष में परावर्तित एवं 20% भाग वायुमंडल द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है। धरातल पर पहुँचे 50% सौर ऊर्जा को स्थल एवं जल अवशोषित कर लेते हैं और फिर वहाँ से यह पार्थिव विकिरण के रूप में वायुमंडल में विकिरित कर दिया जाता है।

यद्यपि पृथ्वी के धरातल तक पहुँची ऊर्जा अंततः अंतरिक्ष में पलायित कर दी जाती है, परंतु इसी क्रम में इस ऊर्जा का जैवमंडल द्वारा व्यापक उपयोग कर लिया जाता है।

मानव तथा पर्यावरण सह-संबंध

मानव प्रत्येक प्रकार के क्रियाकलापों के लिए पर्यावरण पर निर्भर है। परंपरागत समाज इस बात पर बल देते हैं कि प्रकृति में सभी वस्तुयें आपस में संबंधित या जुड़ी हुई हैं। उनके विश्वास के अनुसार, अनेक घटनाएं प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः प्रकृति पर मानवीय क्रियाओं का परिणाम हैं। कहीं पर्यावरण उसे प्रभावित करता है, तो कहीं वह उसके साथ अनुकूलन तथा परिवर्तन (Adaptation and Modification) करता है। इसे पर्यावरण वियोजन भी कहते हैं। वस्तुतः मानव की

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

प्राकृतिक पर्यावरण के साथ दोहरी भूमिका होती है अर्थात् मानव एक तरफ तो भौतिक पर्यावरण के जैविक संघटक का महत्त्वपूर्ण भाग है, तो दूसरी तरफ वह पर्यावरण का एक महत्त्वपूर्ण कारक भी है। इसी प्राकृतिक पर्यावरण तंत्र को विभिन्न मानव क्रियाकलापों से विभिन्न रूपों में प्रभावित करता है। यथा- जीवित या भौतिक मनुष्य के रूप में सामाजिक मनुष्य के तथा प्रगतिशील मानव के रूप में। मानव के सभी प्राकृतिक गुण; जैसे- जन्म, वृद्धि, मृत्यु आदि प्राकृतिक पर्यावरण द्वारा उसी प्रकार प्रभावित तथा नियंत्रित होते हैं, जैसे कि पर्यावरण के अन्य जीवों के प्राकृतिक गुण प्रभावित तथा नियंत्रित होते हैं। चूँकि मानव अन्य प्राणियों की तुलना में शारीरिक एवं मानसिक स्तरों तथा प्रौद्योगिक स्तर पर भी सर्वाधिक विकसित प्राणी है, अत: वह प्राकृतिक पर्यावरण को बड़े स्तर पर परिवर्तित करके अपने अनुकूल बनाने में भी समर्थ है। मानव पर्यावरण के सिद्धांतों को पूर्ण रूप से समझने के लिए यह आवश्यक है कि मानव और उसके पर्यावरण के प्रभावों का अध्ययन किया जाए।

व्हाइट और रैनर ने भौगोलिक पर्यावरण के महत्व को निम्नलिखित रूपों में व्यक्त किया है-

भौतिक वातावरण मानव के बड़े समूहों को स्पष्टत: प्रत्यक्ष रूप में और प्राथमिक तरीके से प्रभावित करता है। रैनर का मानना है कि मानव की कोई भी महत्त्वपूर्ण क्रिया बिना पर्यावरणीय सहायता अथवा प्रभावों के सफल नहीं हो सकती है।

प्रसिद्ध मानव भूगोलविद् सैम्पल ने मानव पर पड़ने वाले भौगोलिक प्रभावों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया है-

(i) प्रत्यक्ष प्रभाव
(ii) अप्रत्यक्ष प्रभाव
(iii) मानव की गतियों को प्रभावित करने वाले प्रभाव
(iv) आर्थिक और सामाजिक प्रभाव

(i) प्रत्यक्ष प्रभाव

पर्यावरण के सभी तत्वों में जलवायु का प्रभाव सबसे महत्त्वपूर्ण है, जो मानव को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। जलवायु का प्रभाव प्राकृतिक वनस्पति और मिटि्टयों द्वारा मनुष्य पर पड़ता है। जलवायु का प्रभाव मनुष्य की शारीरिक बनावट; यथा-रंग, लम्बाई आदि पर पड़ता है। उदाहरण के रूप में, ठंडे जलवायविक क्षेत्रों तथा विषुवत रेखीय क्षेत्रों में देखा जा सकता है।

(ii) अप्रत्यक्ष प्रभाव

मानव द्वारा पर्यावरण पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पूर्व नियोजित नहीं होते हैं। पर्यावरण पर मानव के कार्य-कलापों से जनित अप्रत्यक्ष प्रभाव आर्थिक विकास की रफ्तार को तेज करने के लिए खासकर औद्योगिक विकास में विस्तार, मनुष्य द्वारा किए गये प्रयासों तथा कार्यों के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं। यद्यपि आर्थिक विकास के लिए किए जाने वाले इस तरह के कार्यकलाप आर्थिक रूप से महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं, परन्तु उसके द्वारा उत्पन्न होने वाले पश्चप्रभाव (After effects) निश्चित ही सामाजिक दृष्टि से अवांछनीय हैं।

(iii) मानव की गतिविधियों को प्रभावित करने वाले प्रभाव:-

मानव समूह के आवास-प्रवास को भौतिक पर्यावरण के सभी तत्व विशिष्ट एवं अनेक प्रकार से प्रभावित करते हैं। इनके अंतर्गत पहाड़ों, मरुस्थलों, दलदलों, समुद्रों आदि का प्रभाव मानव के प्रवास पर पड़ता है। ये सभी उसके मार्ग का निधारण करते हैं, उसे सहयोग अथवा असहयोग देते हैं। उदाहरणार्थ, मानव ने नदी मार्गों का यातायात साधन के रूप में उपयोग किया, जिससे अनेक मानव जातियों ने दूर-दूर जाकर अपनी बस्तियाँ स्थापित की।

(iv) आर्थिक और सामाजिक प्रभाव:-

किसी स्थान की भौगोलिक दशाएँ ही इस बात का निर्धारण करती हैं कि वहाँ आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति सरलता से होगी अथवा कठिनाई से, वहाँ किस प्रकार के उद्योग स्थापित किए जा सकते हैं। इस प्रकार के प्रभाव ही मानव समाज के आकार, विविधता आदि तत्वों को निर्धारित करते हैं। संसाधनों की सुलभता मनुष्य के जीवन को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करती है, इससे मनुष्य अथवा किसी देश की आर्थिक क्षमता, सामाजिक संगठन, सामाजिक स्थिरता व अन्तर्राष्ट्रीय संबंध भी निर्धारित होते हैं, जिन क्षेत्रों, द्वीपों या पर्वतीय भागों में आर्थिक संसाधन कम मात्रा में पाए जाते हैं, वहाँ मनुष्य भी छोटे समुदायों में पाये जाते हैं, क्योंकि उन क्षेत्रों में उनके लिए उपयुक्त पर्यावरण नहीं मिलता है।

प्राकृतिक संसाधन:-

प्रकृति अपार संसाधनों से परिपूर्ण है। मानव अपने विकास के आरम्भिक चरण में पूर्णत: प्रकृति पर निर्भर था।

मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ पर्यावरण के साथ उसके सहचर्य का स्वरूप भी बदला है। लगभग 10000 वर्ष पूर्व मानव जंगलों और घास के मैदानों में आखेटक-संग्राहक रूप में रहता था। धीरे-धीरे अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप अपने परिवेश को बदलना प्रारंभ किया, इसी क्रम में कृषकों और पशुपालकों में परिवर्तित हो गया। अधिकांश परंपरागत कृषक जल के लिए प्राकृतिक संसाधनों-वर्षा, जलधाराओं और नदियों पर बहुत हद तक निर्भर थे। आगे चलकर उन्होंने भूमिगत जल निकालने के लिए कुओं का उपयोग शुरू किया तथा जलप्रवाह को रोकने हेतु बाँध बनाया और जमीनों की सिंचाई की। मानव जनसंख्या वृद्धि ने उत्पादन आयामों को प्रेरित किया। फलत: रासायनिक उर्वरकों, आधुनिक कृषि उपकरणों, कीटनाशकों आदि का उपयोग किया जाने लगा।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS Committed to Excellence

2. जीवोम

जीवोम (Biome)

स्थल के विभिन्न क्षेत्रों की भौतिक दशाएँ-धरातलीय उच्चावच, जलवायु, मृदा आदि भिन्न-भिन्न होती हैं। इन भिन्नताओं के अनुरूप उस विशिष्ट क्षेत्र में वनस्पतियों एवं प्राणियों का विकास होता है। भौतिक तत्वों में जलवायु सर्वप्रमुख कारक है, जो वनस्पति समुदाय के विभिन्न पक्षों; घनत्व, ऊँचाई, विस्तार, आकृति आदि का निर्धारण करती है। पुनः इसी वनस्पति समुदाय के अनुरूप उस क्षेत्र में प्राणियों का विकास होता है। अतः किसी भौतिक प्रदेश में पाई जाने वाली विशिष्ट जलवायविक दशाएँ, जैसे- तापमान, आर्द्रता, वर्षा आदि का दैनिक और मौसमी परिवर्तन आदि ही उस क्षेत्र के वनस्पति समुदाय का और उससे सम्बन्धित प्राणी जीवन का निर्धारण करती है। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए क्लाइमेट्स एवं शेल्फर्ड ने 1939 ई. में बायोटिक यूनिट्स की अवधारणा प्रस्तुत की और इन्हीं इकाईयों को जीवोम या बायोम नाम दिया।

जीवोम या बायोम (Biome) जैवमंडल का एक खण्ड है, जो एक निश्चित क्षेत्र तक विस्तृत होता है, जिसमें समान जलवायविक दशाएँ पायी जाती हैं और जिसके अनुरूप समान जीवन चक्र, संरचना एवं अनुकूलन वाली वनस्पति व प्राणीयों की प्रजातियाँ पाई जाती हैं अर्थात् किसी भौगोलिक खण्ड के समस्त पादपों और प्राणियों के समुच्चय को जीवोम कहा जाता है।

वस्तुतः जीवोम एक ऐसी भौगोलिक इकाई है, जिसमें विशिष्ट प्रकार की वनस्पतियों और प्राणियों का जीवन समान रूप में विकसित होता है और वही उसकी पहचान बन जाती है।

जीवोम का वर्णन मुख्य रूप से वनस्पतिक लक्षणों के आधार पर किया जाता है, परन्तु यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि जीवोम के अन्तर्गत वनस्पति एवं प्राणी दोनों ही शामिल होते हैं। अतः यह किसी क्षेत्र का समग्र समुदाय है और यह प्रादेशिक जलवायु एवं प्रादेशिक जीव समूह के मध्य अन्तर्क्रिया का ही उत्पाद है।

पृथ्वी पर विविध प्रकार के जीवोम चिन्हित किए गए हैं, जोकि विस्तृत भू-भाग में फैले हैं। कोई भी दो जीवोम एक जैसे नहीं होते। किसी जीवोम की सीमाएँ क्या होगीं तथा प्रत्येक जीवोम में वनस्पतियों तथा प्राणियों की उपलब्धता कैसी होगी? इसका निर्धारण जलवायु द्वारा होता है। किसी भी जीवोम को प्रभावित करने वाले कारकों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारक तापमान तथा वर्षण हैं।

जीवोम के प्रकार (Types of Biome)

पृथ्वी के बायोम को विभिन्न आधारों; यथा- जलवायु, वनस्पति, मृदाजल की दशा, ऊष्मा, पौधों की वृद्धि दर आदि के आधार पर वर्गीकृत किया गया है। इसमें विशिष्ट प्रकार के पौधे और जीव पाये जाते हैं, जिसे जीवमण्डल भी कहा जा सकता है। जीवोम की विविधता भौतिक पर्यावरण विशेष रूप से जलवायु और धरातल की देन है। पौधों की ऊँचाई, पत्तियों का आकार, वृक्षों की सघनता तथा उनमें आश्रय पाये जीवों का प्रत्यक्ष संबंध जलवायु से है। अतः जलवायु के आधार पर विश्व के विभिन्न जीवोमों का निर्धारण किया गया है तथा इनके द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी के जीवोम के प्रकारों का निर्धारण वनस्पति के आधार पर किया गया है। आवास की प्रकृति के आधार पर बायोम को मुख्यत दो वृहद् समूहों में विभाजित किया जाता है:-

(I) स्थलीय जीवोम (Terrestrial Biome)

(II) जलीय जीवोम (Aquatic Biome)

स्थलीय जीवोम (Terrestrial Biome)

स्थलीय समुदाय को प्रमुख उपवर्गों, वन जीवोम, मरू जीवोम और टुण्ड्रा जीवोम में बांटा गया है। स्थलीय जीवोम के अन्तर्गत हरे पादपों का प्रभुत्व सर्वप्रथम होता है क्योंकि इनकी संख्या, विस्तार और प्रभाव प्राणियों की तुलना में अधिक है। चूँकि पादप या पौधे स्वपोषी होते हैं। अतः ये जीवोम का आधार निर्मित करते हैं। पौधों के विकास को स्थानीय जलवायु प्रभावित करती है। विश्व के स्थलीय जीवोम को निम्नलिखित भागों में वर्गीकृत किया गया है-

(1) टुण्ड्रा जीवोम (Tundra Biome)

(i) आर्कटिक टुण्ड्रा जीवोम (ii) अल्पाइन जीवोम

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

(2) शीतोष्ण कटिबन्धीय वन जीवोम (Temperate Forest Biome)

(i) भूमध्य सागरीय वन जीवोम (ii) टैगा वन जीवोम (iii) पतझड़ वन जीवोम

(3) शीतोष्ण कटिबन्धीय घास जीवोम (Temperate Grass Biome)

(i) स्टेपी जीवोम (iii) पम्पास जीवोम

(ii) प्रेयरी जीवोम (iv) डाउन्स जीवोम

(4) उष्णकटिबन्धीय वन जीवोम (Tropical Forest Biome)

(i) पर्वतीय वन जीवोम (ii) सदाबहार वन जीवोम (iii) पतझड़ वन जीवोम

(5) उष्णकटिबन्धीय घास जीवोम (Tropical Grass Biome)

(i) सवाना वन जीवोम (ii) सवाना घास जीवोम (iii) सवाना वन तथा घास जीवोम

(6) उष्णकटिबन्धीय मरुस्थलीय जीवोम (Hot Desert Biome)

यहाँ यह जानना आवश्यक है कि दो पड़ोसी जीवोम के मध्य की सीमा रेखा स्पष्टता से शायद ही कभी निर्धारित होती है। हालाँकि, ये जीवोम अन्तर्वर्ती क्षेत्र, जो कि इकोटोन कहलाता है, के द्वारा मिले होते हैं।

जलीय जीवोम (Aquatic Biome)

स्थलीय जीवोम की तुलना में जलीय जीवोम का वर्गीकरण अपेक्षाकृत अधिक कठिन कार्य है। चूँकि स्थलीय जीवोम में मुख्यत: वनस्पतियों का ही योगदान होता है और ये वनस्पतियाँ धरातल पर स्थायी रूप से निवास करती हैं, अत: उनका वितरण स्पष्टतया दृष्टिगत होता है। जबकि जलीय जीवोम के वर्गीकरण में त्रिआयामी क्षेत्र का ध्यान रखना पड़ता है क्योंकि इसमें जल की गहराई या जलीय स्तम्भ की दृष्टि से भी जीवोम के वितरण का विश्लेषण करना होता है।

जलीय जीवोम का विभाजन जलीय आवास की भौतिक विशेषताओं, जैसे- लवणता, गहराई, जलीय गति आदि के आधार पर किया जाता है। यहाँ उल्लेखनीय है कि स्थलीय जीवोम के निर्धारण में तापमान की भूमिका तो सर्वप्रमुख है, परंतु जलीय जीवोम की दृष्टि से इसका महत्त्व घट जाता है, क्योंकि जल की विशिष्ट ऊष्मा बहुत अधिक है इसीलिए दैनिक, मौसमी या अक्षांशीय आधार पर जल के तापमान में अंतर अपेक्षाकृत कम होता है। इसके अतिरिक्त जलीय जीवोम के निर्धारण में लवणता, जलदाब, प्रकाश की उपलब्धता आदि की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इनमें भी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लवणता है, अत: जलीय जीवोम को लवणता के आधार पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(A) सागरीय (खारा जल) जीवोम (Marine Biome)

सागरीय जीवोम धरातल पर वृहद् स्तर पर फैला हुआ है। सागरीय जीवोम की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि ये निरंतरता में बने रहते हैं अर्थात् उनका स्पष्ट विभाजन नहीं हो पाता, बल्कि उनमें संक्रमण क्षेत्र पाये जाते हैं। फिर भी विश्व के सागरीय जीवोम को जलवायविय दशाओं के आधार पर 9 जैव-भौगोलिक प्रदेशों में विभाजित किया जाता है-

(i) आर्कटिक प्रदेश
(ii) उप-आर्कटिक प्रदेश
(iii) उष्णकटिबन्धीय प्रदेश
(iv) उत्तरी उपोष्ण प्रदेश
(v) दक्षिणी उपोष्ण प्रदेश
(vi) उत्तरी शीतोष्ण प्रदेश
(vii) दक्षिणी शीतोष्ण प्रदेश
(viii) अंटार्कटिक प्रदेश
(ix) उप अंटार्कटिक प्रदेश

वेलापवर्ती प्रभाग:- इसके अन्तर्गत वे प्रकाशीय प्रदेश आते हैं, जहाँ महासागर के ऊपरी जलीय भाग में प्रकाश की उपलब्धता बनी रहती है। चूँकि जल की गहराई में वृद्धि के साथ प्रकाश का अवशोषण बढ़ता जाता है, जिसके कारण एक निश्चित गहराई पर प्रकाशीय प्रदेश की सीमा तय हो जाती है। किन्तु अलग-अलग क्षेत्रों में इसकी गहराई भिन्न होती है। उदाहरण के लिए, तटवर्ती क्षेत्रों के प्रकाशीय प्रदेश धरातल से 30 मीटर से अधिक गहरा नहीं होते हैं, जबकि खुले सागर में यह 200 मीटर तक की गहराई हो सकता है। यह प्रकाशीय क्षेत्र अत्यंत महत्त्वपूर्ण होता है, क्योंकि महासागर की समस्त प्रकाश संश्लेषण क्रियाएँ इसी प्रदेश में सम्पन्न होती हैं। फलत: समस्त जैविक ऊर्जा, जो समस्त सागरीय जीवन को बनाए रखने के लिए आवश्यक है, वह इसी छिछले सागरीय प्रदेश में उत्पादित होती है।

नितलस्थ प्रभाव:-

सामान्यत: महासागर के तली या नितल को ही नितलस्थ प्रभाग अथवा नितलस्थ क्षेत्र कहते हैं। नितलस्थ क्षेत्र के अन्तर्गत तीन स्तर पाये जाते हैं-

(i) **नितलस्थ प्रदेश:-** यह महाद्वीपीय मग्नतट पर विस्तृत नितल क्षेत्र है, जो पर्वत के पार्श्वों के समरूप सागरीय प्रदेश है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com

यह महाद्वीपीय मग्नतट के किनारों पर अत्याधिक परिवर्तनशील उच्चावच वाला प्रदेश है, जहाँ जल तेजी से महासागरीय गहराईयों में गिरता है।

(ii) विनितलस्थ प्रदेश:- यह महासागर के अधिकांश विस्तार के नितल को दर्शाता है, जो 2000 मी.से 6000 मी. की गहराई तक पाया जाता है।

(iii) उन्नमन प्रदेश (Hadal Zone):- महासागर के नितल पर पाई जाने वाली गहरी खाईयों को उन्नमन प्रदेश के रूप में दर्शाया जाता है। जिसकी गहराई 6000 मी. से 10000 मी. तक हो सकती है।

महासागर का सबसे छिछला प्रदेश बड़े झीलों के सीमांत या जहाँ सागर तट से मिलता है, उसे वेलांचली प्रदेश या अंतर्ज्वारीय प्रदेश कहते हैं। महासागरीय सूक्ष्मजीवों में प्लवक एवं नेक्टन (Nekton) शामिल होते हैं, ये सभी सम. ुद्री जल में तैरते रहते हैं, जैसे- प्रकाश संश्लेषी पादप (फाइटोप्लैंकटन) अथवा सूक्ष्मजीव (जैवप्लैंकटन) जैसे -छोटे क्रस्टेशियन एवं अकशेरूकी लार्वा। जैवप्लैंकटन भी शाकाहारी या मासाहारी हो सकते हैं। शाकाहारी जैवप्लैंकटन अपना पोषण पादपप्लैंकटन को खाकर करते हैं, जबकि मांसाहारी जैवप्लैंकटन अपना पोषण उन्हीं शाकाहारी जैवप्लैंकटन को खाकर प्राप्त करते हैं। जैसे-ऐरो वर्म तथा कोम्बजेली के लार्वा आदि।

(B) स्वच्छ जल जीवोम:-

नदियों, दलदली भूमि, झील व तालाब आदि आंतरिक जलाशयों में पाये जाने वाले जैविक तंत्र को स्वच्छ जल जीवोम (Freshwater Biome) के अन्तर्गत शामिल किया जाता है। इन जीवोमों में अत्यधिक विविधता पायी जाती है, क्योंकि ये न केवल स्थानीय मृदा एवं जलवायविक दशाओं, बल्कि अपने चारों ओर के स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र से भी प्रभावित होते हैं। चूँकि जलीय जीवोमों (विशेष रूप से झील एवं तालाब) की सर्वप्रमुख विशेषता स्थिर जल है और उनके जल में लम्बवत् रूप से प्रकाश, तापमान, पोषण एवं जीवों की दृष्टि से स्थिरीकरण पाया जाता है।

स्थिर जल तंत्र जीवोम के जीवों को भी पिलैजिक और नितलीय (Benthic) वर्गों में विभाजित किया जाता है। वेलांचल क्षेत्र (Littoral Zone) (जलाशय में सबसे ऊपर स्थित) में जड़युक्त पौधे पाये जाते हैं, जबकि सरोवरी क्षेत्र (limnetic Zone) में पिलैजिक जीव पाये जाते हैं।

स्मरणीय है कि झील या तालाब तंत्र उच्च उत्पादक होते हैं तथा कई मामलों में उनकी उत्पादकता अजैविक पोषकों; जैसे- फॉस्फोरस की उपलब्धता द्वारा सीमित हो जाती है। उत्पादकता के आधार पर झीलों को (विशेषकर शीतोष्ण कटिबंधीय झीलों को) दो वर्गों में विभाजित किया जाता है:-

(i) अल्पपोषी (Oligotrophic)

(ii) सुपोषी (Eutrophic)

(i) अल्पपोषी (Oligotrophic)

इस प्रकार की झीलों की गहरायी अधिक होती है। किन्तु इनमें अपेक्षाकृत पोषक तत्वों का आगम निम्न होता है। अत्यधिक गहरा होने के कारण लंबवत् संचरण अपर्याप्त होता है, फलत: उत्पादकता में कमी हो जाती है।

(ii) सुपोषी (Eutrophic)

ऐसी झीलें अपेक्षाकृत छिछली एवं उच्च उत्पादक होती हैं। इनमें प्रकाश झील के तली तक पहुँचने में सक्षम होता है। साथ ही, मौसम में परिवर्तन के साथ जल का लम्बवत् परिसंचरण खनिज पोषकों को धरातल तक वापस लाने में और ऑक्सीजन को गहराई तक ले जाने में सहायक होता है। जलीय पारिस्थितिकी तंत्र अनेक महत्त्वपूर्ण पर्यावरणीय कार्य सम्पादित करते हैं। उदाहरण के लिए, वे पोषकों के पुन:चक्रण, जल के शोधन, बाढ़ को क्षीण करने, भौमजल तथा वन्यजीव के लिए आवास प्रदान करने में सहायक होते हैं। जलीय पारिस्थितिकी तंत्र मानव के मनोरंजन के साथ-साथ पर्यटन उद्योग, विशेषकर तटीय प्रदेशों के लिए काफी महत्त्वपूर्ण है। जलीय तंत्र में बाह्य दबाव के कारण असंतुलन उत्पन्न होने का खतरा हो जाता है। ये दबाव भौतिक, रासायनिक और जैविक विधियों से पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों के ही परिणाम होते हैं। भौतिक परिवर्तनों से तात्पर्य जल के तापमान, प्रवाह एवं प्रकाश की उपलब्धता में पि. रवर्तन से है, जबकि रासायनिक परिवर्तनों में जैव उद्दीपक पोषकों की प्राप्ति दर में कमी, ऑक्सीजन उपभोक्ता पदार्थों एवं विषाक्त पदार्थों की मात्रा में परिवर्तन शामिल होता है। जीव-वैज्ञानिक परिवर्तनों में असामान्य विदेशी प्रजातियों की घुसपैठ तथा मानवीय हस्तक्षेप में वृद्धि को शामिल किया जाता है। अत: असामान्यताओं को नियंत्रित करना और जलीय पर्यावरण व पारिस्थितिकी तंत्र के संतुलन की रक्षा करना समय की माँग है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

3. पारिस्थितिकी

पारिस्थितिकी (Ecology) वह विज्ञान है, जिसके अंतर्गत समस्त जीवों तथा भौतिक पर्यावरण के मध्य अंतर्संबंधों एवं विभिन्न जीवों के मध्य पारस्परिक अंतर्संबंधों का अध्ययन किया जाता है। सामान्य अर्थों में देखें तो पारिस्थितिकी जीव विज्ञान की एक शाखा है, जिसमें जीव समुदायों का उसके वातावरण के साथ पारस्परिक अन्तरक्रियाओं का अन्वेषण किया जाता है। प्रत्येक जन्तु या वनस्पति एक निश्चित वातावरण में रहते हैं, पारिस्थितिकी में इन्हीं तथ्यों का देखा जाता है कि जीव आपस में और पर्यावरण के साथ किस तरह क्रिया करते हैं एवं पृथ्वी पर जीवन की जटिल संरचना का पता लगाते हैं।

पारिस्थितिकी दो शब्दों से मिलकर बना है, जोकि ग्रीक शब्द ''Oekologie'' से लिया गया है यहाँ 'Oekos' का अर्थ घेराव या आस-पास का क्षेत्र तथा 'logs' का अर्थ एक ''पूरे पारिस्थितिकी का अध्ययन'' करना होता है। पारिस्थितिकी (इकोलॉजी) शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग जर्मन जीव विज्ञानी अर्नेस्ट हेकल ने 1869 ई. में किया था। पारिस्थितिकी को सर्वप्रथम परिभाषित करने और विस्तृत अध्ययन करने का श्रेय भी जर्मन जीव विज्ञानी अर्नेस्ट हेकल को ही प्राप्त है।

अर्नेस्ट हेकल के अनुसार ''वातावरण और जीव-समुदाय के पारस्परिक संबंधों के अध्ययन को पारिस्थितिकी कहते हैं।'' बीसवीं सदी के आरंभ में मनुष्य और उसके पर्यावरण के बीच संबंधों पर विषद् अध्ययन प्रारम्भ हुआ। एक साथ कई विषयों में इस ओर ध्यान दिया गया। परिणामस्वरूप, मानव पारिस्थितिकी की संकल्पना सामने आयी।

पारिस्थितिकी के नियम

प्रकृति के विभिन्न क्रियाकलापों तथा अवयवों के अध्ययनोपरांत बहुत-से पर्यावरणविदों ने पारिस्थितिकी के कुछ नियम प्रतिपादित किए हैं। पारिस्थितिकी की क्रियाशीलता के संदर्भ में बैरी कोमोनर (Barry Commoner) द्वारा प्रतिपादित नियम सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। कोमोनर ने पारिस्थितिकी के चार नियम बताए हैं, जो इस प्रकार हैं-

(1) पारिस्थितिकी का प्रथम नियम

प्रथम नियम के अनुसार, पारिस्थितिकी तंत्र में प्रत्येक वस्तु एक- दूसरे से संबंधित होती है। उनमें यह अंतर्संबंध पदार्थ अथवा ऊर्जा के माध्यम से स्थापित होता है। पदार्थ अर्थात् कोई भी ऐसी वस्तु, जो स्थान घेरती है और जिसमें द्रव्यमान होता है, से ही जैविक-अजैविक तत्त्वों की रचना होती है।

सभी जीवित पदार्थ ऊर्जा के द्वारा ही स्वयं या अन्य वस्तुओं को गति प्रदान करते हैं। किसी एक पदार्थ अथवा ऊर्जा की मात्रा में कमी या वृद्धि का प्रभाव पारिस्थितिकी तंत्र के अन्य पदार्थों पर अवश्य पड़ता है। सभी पारितंत्रों में स्वयं को स्थिर करने की प्रवृत्ति होती है। यद्यपि वे अपने मार्ग से भटक जाते हैं, तो स्थिरकारी संबंधों के तंत्र इस प्रकार क्रियाशील हो जाते हैं कि वे तंत्र पुन: अपनी स्थिरता की ओर अग्रसर हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, तापमान में वृद्धि के फलस्वरूप शैवालों की तेजी से वृद्धि होती है, इसके फलस्वरूप तंत्र में अजैविक पोषकों की आपूर्ति घट जाती है। इससे शैवाल एवं पोषण चक्र में असंतुलन पैदा होता है।

(2) पारिस्थितिकी का द्वितीय नियम

कोमोनर के द्वितीय नियम के अनुसार-पदार्थ कभी विनष्ट नहीं होते हैं अर्थात् कोई भी वस्तु निरर्थक या बेकार नहीं है। प्रत्येक प्राकृतिक तंत्र में, यदि किसी एक तंत्र द्वारा कोई वस्तु निकाल दी जाती है, तो उसी वस्तु को दूसरा तंत्र अपने भोजन के लिए प्रयोग कर लेता है। प्राणी कार्बन-डाई-ऑक्साइड को अपने श्वसन के अपशिष्ट के रूप में त्याग देता है, परंतु यही कार्बन डाई ऑक्साइड हरित पादपों के लिए आवश्यक पोषक तत्त्व बन जाता है।

(3) पारिस्थितिकी का तृतीय नियम

यह नियम काफी हद तक अर्थशास्त्र के उस नियम से मिलता-जुलता है जिसमें किसी भी प्रकार के लाभ की प्राप्ति हेतु कुछ लागत देनी ही होती है। चूँकि पारिस्थितिकी तंत्र के प्रत्येक तत्त्व एक-दूसरे से संबंधित हैं, अत: किसी भी प्रकार का लाभ प्राप्त करने के लिए पारितंत्र में कुछ न कुछ अवश्य प्रदान करना होगा, जैसे- ऊर्जा प्राप्ति के लिए ऊर्जा लगानी पड़ेगी।

(4) पारिस्थितिकी का चतुर्थ नियम

इस नियम के अनुसार, पारिस्थितिकी तंत्र प्राकृतिक व्यवस्था का पोषक है। इस तंत्र में मानव द्वारा किया गया कोई भी परिवर्तन उसके अस्तित्व के लिए विनाशकारी साबित हो सकता है। मानव अपनी बौद्धिक क्षमता द्वारा जितना परिवर्तन करता है, उसके दूरगामी परिणामों को समझने में वह सक्षम नहीं होता। दूसरी ओर, प्रकृति संपूर्ण तंत्र के समस्त पहलुओं को एक साथ संतुलित करती है और इसे दीर्घकाल तक बनाए रखने में सक्षम होती है।

तथ्य सार:-

(1) प्रथम नियम:- प्रत्येक वस्तु प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से एक दूसरे से संबंधित हैं, अत: हम सभी इसमें साथ-साथ हैं। (Everything is Connected to Everything)

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

(2) द्वितीय नियम:- प्रत्येक वस्तु को कहीं जाना ही है (Everything is must go some where)।
(3) तृतीय नियम:- यहाँ कुछ भी मुफ्त नहीं है (There is no such things as a free lunch)।
(4) चतुर्थ नियम:- प्रकृति सर्वोत्तम जानती है (Nature Knows best)।

पारिस्थितिकी तंत्र (Ecosystem)

पारिस्थितिकी तंत्र या पारितंत्र (इकोसिस्टम) एक विशेष और पहचान योग्य भूदृश्य वाला क्षेत्र होता है, जैसे- वन, रेगिस्तान, चारागाह, दलदल या तटीय क्षेत्र आदि। पारितंत्र के अंतर्गत एक क्षेत्र विशेष के सभी जीवधारी भौतिक पर्यावरण (अजैविक घटक) के साथ अंतर्क्रिया कर एक संपूर्ण जैविक इकाई का निर्माण करते हैं। इस प्रकार का एक तंत्र, जिसमें एक समुदाय के समस्त जीव व उनसे अंत: क्रिया करने वाले संबद्ध अजैविक घटक शामिल हों, पारिस्थितिकी तंत्र या पारितंत्र कहलाता है। प्रकृति में पारिस्थितिक तंत्र को दो प्रमुख वर्गों, स्थलीय तथा जलीय तंत्रों में वर्गीकृत किया जाता है। वन, घासस्थल, मरुस्थल आदि स्थलीय पारितंत्र के उदाहरण हैं, जबकि तालाब, झील, झरने तथा समुद्र आदि जलीय पारितंत्र के उदाहरण हैं।

पारिस्थितिकी तंत्र (Ecosystem) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ए.जी. टांसले ने सन् 1835 ई. में प्रतिपादित किया था। टांसले के अनुसार, किसी भी स्थान के जैविक समुदाय के जीवों तथा उनके चारों ओर पाये जाने वाले अजीवीय वातावरण में पारस्परिक संबंध होता है और ये दोनों एक-दूसरे पर प्रभाव डालते हैं। समुदायों के जीवों की रचना, कार्य व उनके वातावरण के पारस्परिक संबंध को पारिस्थितकी तंत्र के अंतर्गत रखते हैं।

पारिस्थितिकी तंत्र की विशेषताएँ:-

- पारिस्थितिकी तंत्र एक कार्यशील क्षेत्रीय इकाई होती है, जो क्षेत्र विशेष के सभी जीवधारियों एवं उनके भौतिक पर्यावरण के सकल योग का प्रतिनिधित्व करती है।
- पारिस्थितिकी तंत्र जीवमंडल में एक सुनिश्चित क्षेत्र धारण करता है।
- पारिस्थितिकी तंत्र एक खुला तंत्र (Open system) होता है, जिसमें ऊर्जा तथा पदार्थों का आगम (Input) तथा बहिर्गमन (Output) होता है।
- ऊर्जा, जैविक तथा भौतिक संघटकों के मध्य जटिल पारस्परिक अंत: क्रियाएँ होती हैं, साथ ही साथ विभिन्न जीवधारियों में भी पारस्परिक क्रियाएँ होती हैं।
- जब तक एक पारिस्थितिकी तंत्र के एक या अधिक नियंत्रक कारकों में अव्यवस्था उत्पन्न नहीं होती, तब तक पारिस्थितिकी तंत्र अपेक्षाकृत स्थिर समस्थानिक होता है।
- पारितंत्र में पदार्थों का गमन चक्रीय रूप में सम्पादित होता है। पदार्थों का यह चक्रण कई परस्पर संबंधित चक्रों: जैसे- जल -चक्र, कार्बन-चक्र, नाइट्रोजन-चक्र, ऑक्सीजन-चक्र आदि से सम्पादित होता है।
- इन चक्रों को सम्मिलित रूप से भू-जैव रसायन चक्र (Biogeochemical Cycle) कहते हैं।
- पारिस्थितिकी तंत्र में क्षेत्रीय विस्तार की दृष्टि से विविधता होती है। यह अति लघु विस्तार वाला हो सकता है, जैसे- किसी वृक्ष का कोई एक भाग जड़, तना एवं पत्तियों सहित शाखाएँ या वृहत्तम आकार वाला हो सकता है: जैसे- समस्त जीवमंण्डल।
- पारिस्थितिकी तंत्र संरचित तथा सुसंगठित तंत्र होता है।
- पारिस्थितिकी तंत्र की निजी उत्पादकता होती है। उत्पादकता किसी क्षेत्र में प्रति इकाई में जैविक पदार्थों की वृद्धि दर की द्योतक होती है। हरे पौधे सौर्यिक प्रकाश, जल तथा वायुमण्डलीय कार्बन डाई ऑक्साइड की सहायता से प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया द्वारा अपना भोजन (कार्बोहाइड्रेट बनाते हैं, इसे ऊर्जा कहा जाता है) बनाते हैं।

पारिस्थितिकी तंत्र के घटक:-

जैविक घटक (Biotic Components)

इसके अंतर्गत उत्पादक, उपभोक्ता तथा अपघटक आते हैं। उत्पादक स्वपोषी होते हैं, जोकि साधारणतया क्लोरोफिलयुक्त जीव होते हैं, ये सामान्य अकार्बनिक अजैविक पदार्थों को सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में संचित कर अपना भोजन बनाते हैं। स्थलीय तथा जलीय आवासों में विभिन्न प्रकार के प्रकाश संश्लेषी जीवाणु, रसायन संश्लेषी जीवाणु तथा प्रकाश संश्लेषी प्रोटोजोआ भी कार्बनिक पदार्थों का उत्पादन करते हैं। स्थलीय पारितंत्र में स्वपोषी प्राय: जड़युक्त शाक, झाड़ी तथा वृक्ष शामिल हैं, जबकि जलीय पारितंत्र में पादप प्लवक (Phytoplankton) नामक प्लवी पौधे प्रमुख उत्पादक होते हैं।

किसी पारिस्थितिकी तंत्र के जैविक घटकों में समस्त वनस्पति एवं प्राणी तंत्र को तीन भागों में बाँटा जा सकता है-

(1) उत्पादक (2) उपभोक्ता (3) विघटक/अपघटक

(1) उत्पादक (Producers)

उत्पादक के अंतर्गत वे सभी जीव या हरे पौधे आते हैं, जो स्वयं अपना भोजन बनाने में सक्षम होते हैं, स्वपोषी या प्राथमिक उत्पादक कहलाते हैं। हरे पादपों में क्लोरोफिल नामक पदार्थ उनकी कोशिका के लवकों (Plastid) में उपस्थित

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

रहता है। यह क्लोरोफिल प्रकाश को संश्लेषित करके कार्बन डाई ऑक्साइड व जल की सहायता से अपना भोजन, ग्लूकोज अणु (शर्करा) के रूप में निर्मित करके संचित करते जाते हैं। हरे पौधे, हरे शैवाल, हरे जीवाणु, बायोफाइटा, टेरिडोफाइटा, जिम्नोस्पर्म आदि प्राथमिक उत्पादकों में शामिल हैं।

(2) उपभोक्ता (Consumers)

ऐसे जीवधारी, जो स्वयं अपना भोजन बनाने में सक्षम नहीं हैं और पोषण के लिए अन्य जीवों पर निर्भर होते हैं, परपोषी जीव या उपभोक्ता कहलाते हैं। पारिस्थितिक तंत्र के अंतर्गत उपभोक्ताओं को भी तीन श्रेणियों में बाँटकर देखा जा सकता है:-

(a) प्राथमिक उपभोक्ता (Primary Consumers)

इसके अंतर्गत वे जीवधारी आते हैं, जो पूर्णतः शाकाहारी जीव (Herbivores) होते हैं। ये प्राथमिक उत्पादकों अथवा हरे पादपों से अपना भोजन प्राप्त करते हैं। ये प्रायः छोटे अथवा बड़े स्थलीय (Terrestrial) अथवा जलीय (Aquatic) तंत्रों में पाए जाते हैं। कुछ समुद्री जीव-जन्तु, खरगोश, बकरी, हिरण, जिराफ, गाय आदि सामान्य प्राथमिक उपभोक्ता हैं।

(b) द्वितीयक उपभोक्ता (Secondary Consumers)

वे सभी जन्तु, जो भोजन के लिए प्रथम श्रेणी के उपभोक्ताओं पर निर्भर होते हैं, उन्हें द्वितीयक उपभोक्ता की श्रेणी में रखते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो ऐसे जन्तु माँसाहारी (Carnivores) अथवा सर्वाहारी (Omnivores) होते हैं। इसके अंतर्गत पक्षी, साँप, लोमड़ी, कुत्ता और बिल्ली आदि आते हैं।

(c) तृतीयक उपभोक्ता (Tertiary Consumers)

ये सर्वोच्च श्रेणी के माँसाहारी जीव हैं। ये द्वितीयक श्रेणी के उपभोक्ताओं को अपना आहार बनाते हैं। इसके अंतर्गत बाज, गिद्ध, चीता व शेर आदि आते हैं।

(3) विघटक या अपघटक (Decomposers)

ऐसे जैविक घटक, जो पारिस्थितिकी तंत्र में उत्पादक तथा उपभोक्ता की मृत्यु के पश्चात् उनके शरीर का अपघटन करते हैं, अपघटनकर्त्ता कहलाते हैं। ऐसे मृत जीवों के अपघटन के लिए कुछ विशेष कवक तथा जीवाणु निरंतर क्रियाशील रहते हैं जिन्हें अपघटक या मृतपोषी कहा जाता है। अत्यंत सूक्ष्म आकार के इन अपघटकों की भूमिका किसी पारिस्थितिकी तंत्र में अत्यधिक महत्ता रखती है। कुछ अपघटकों को अपमार्जक भी कहते हैं। कुछ प्राणी: जैसे- केंचुए तथा अन्य सूक्ष्म जीव एवं ऑर्थोपोडा अपरद भोजी (Detritus feeders) भी होते हैं और उन्हें अपरदभक्षी (Detrivores) भी कहा जाता है। इनका योगदान जैविक पदार्थ के अपघटन में भी होता है।

Note:- मृत पौधों के भाग एवं जंतुओं के अवशेषों को अपरद कहते हैं।

अजैविक घटक (Abiotic Components)

पारिस्थितिकी तंत्र में अजैविक घटकों के अंतर्गत विभिन्न भौतिक तथा रासायनिक परिघटनाएँ एवं प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं। प्रत्येक अजैविक कारक अन्य कारकों से प्रभावित होता है तथा साथ ही अन्य कारकों को प्रभावित भी करता है अर्थात् ऐसे निर्जीव पदार्थ, जो जीवों को किसी न किसी रूप में प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए, मृदा, वायु, जल, कार्बनिक और अकार्बनिक पदार्थ आदि। अजैविक घटक इस बात को सुनिश्चित करते हैं कि जीव पर्यावरण में कहाँ और किस रूप में अपना अस्तित्व बनाए हुए है अर्थात् कोई जीव अपने पर्यावरण में कहाँ और कितने सुचारू रूप से रह पाता है, इसके सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण निर्धारक तत्त्व अजैविक कारक ही होते हैं।

पारिस्थितिक तंत्र के अंतर्गत अजैविक घटकों को विभिन्न वर्गों में विभाजित किया गया है, जो इस प्रकार हैं-

भौतिक कारक

तापमान, प्रकाश, वायु, आर्द्रता, मृदा, धारा एवं वर्षा आदि, जिनका निर्माण सौर ऊर्जा के जैविक और अजैविक तत्त्वों के संसर्ग से होता है इत्यादि, प्रमुख भौतिक कारक हैं। ये सभी जीवधारियों को जीवनपर्यन्त प्रभावित करते हैं और उनकी वृद्धि, विकास आदि क्रियाओं को नियंत्रित करते हैं।

तापमान (Temperature)

पारिस्थितिकी तंत्र के अंतर्गत तापमान एक महत्त्वपूर्ण पर्यावरणीय अजैविक कारक है। पृथ्वी पर विद्यमान सभी जीव तापीय वातावरण में रहते हैं। यह ऊष्मा और तापक्रम के रूप में निरूपित होता है। यह कारक प्राणियों की उपापचयी व जैविक क्रियाओं को प्रभावित करता है।

पौधों तथा प्राणियों की वृद्धि व वितरण इनसे प्रभावित होता है। तापमान सीमाकारी कारक (Limiting Factor) का भी कार्य करता है। प्राणियों में प्रजनन, भ्रूणीय परिवर्धन, प्रवसन तथा असंख्य व्यावहारिक क्रियाएँ इससे प्रभावित होती हैं। तापमान की अन्य अजैविक कारकों (जैसे- आर्द्रता, वायु आदि) के साथ होने वाली अंतक्रिया के कारण प्राणी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होते हैं।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

प्रकाश (Light)

प्रकाश द्वारा संश्लेषित ऊर्जा ही सभी जीवधारियों के जीवन का मूलाधार है। वस्तुत: हमें आँख से दिखने वाली बैंगनी, नीली, आसमानी नीली, हरी, पीली, नारंगी तथा लाल रंगों की किरणों को ही प्रकाश कहा जाता है। लेकिन सूर्य के प्रकाश से अन्य बहुत सी किरणें निसृत होती हैं: जैसे- अल्ट्रावाइलेट (पराबैंगनी) किरणें, कॉस्मिक किरणें (Cosmic Rays), अवरक्त किरणें (Infrared Rays), रेडियो तंरगें (Radio Waves) आदि भी सूर्य से पृथ्वी पर निरंतर निसृत होती हैं।

आर्द्रता (Humidity)

आर्द्रता का स्थानीय जन्तु तथा वनस्पतियों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। उभयचर प्राणी (मच्छर, तिलचट्टा), भूमिगत अकशेरूकीय जीवों की उपस्थिति व अनुपस्थिति पर आर्द्रता का अत्यधिक प्रभाव होता है। बहुत-से प्राणियों में आर्द्रता के लिए स्पष्ट सहनशीलता (आर्द्रताग्राहिता) भी पाई जाती है, जैसे- सिल्वर फिश या रजत मीन के प्रजनन के लिए 80-90 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता की आवश्यकता होती है।

जल (Water)

समस्त जीवमंडल के जीवधारियों के जीवन व विकास के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जल का असीमित महत्त्व है। जल के अभाव में पारिस्थितिकी तंत्र की क्रियाशीलता समाप्त हो जाती है। जल की उपलब्धता वनस्पतियों, पादपों आदि के उद्भव तथा विकास के लिए अनिवार्य घटक है। स्थलीय पादपों का वितरण प्रत्यक्ष रूप से जल की उपलब्धता पर निर्भर करता है। विशेष प्रकार की वनस्पति विशेष प्रकार के जंतुओं का संभरण करती है। इसलिए स्थलीय जन्तुओं के वितरण में भी अप्रत्यक्ष रूप से जल की उपलब्धता का महत्त्व होता है। पादपों को उपलब्ध जल का परिमाण केवल वर्षा के मान पर ही निर्भर नहीं करता, अपितु मृदा की जलधारिता पर भी निर्भर करता है। मरुस्थलीय क्षेत्र में जल की कमी के कारण जंतुओं और पौधों में जल- संरक्षण के लिए अनेकों शारीरिक परिवर्तन हो जाते हैं, जिन्हें 'मरुस्थलीय अनुकूलन' कहते हैं।

मृदा (Soil):-

'मृदा' शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'सोलम' (Solam) शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है- पृथ्वी का वह पदार्थ, जिसमें पादप वृद्धि करते हैं। मृदा पौधों में पोषक पदार्थों तथा पानी की आपूर्ति के स्रोत के अलावा, खाद्य शृंखला का भी महत्त्वपूर्ण स्रोत है।

दाब (Pressure)

ऊँचाई बढ़ने के साथ-साथ वायुमण्डलीय दाब का 'घटना' इसका एक प्रमुख अवयव है। दाब का असंतुलन प्राणियों के विकास को गंभीर रूप से प्रभावित कर सकता है। ऊँचाई के साथ दाब में होने वाला ह्रास अकशेरूकीय जीवों, पादपों तथा अन्य निम्न श्रेणी के कशेरूकीय जीवों के लिए अधिक हानिकारक नहीं होता है, जबकि समतापी प्राणियों में ऊँचाई पर कम दाब उपलब्ध ऑक्सीजन के परिमाण में कमी कर देता है, जो उनके श्वसन में बाधक होती है।

रासायनिक कारक

वायु के साधारण तत्वों में लगभग 20% ऑक्सीजन, 79% नाइट्रोजन तथा 0.03% कार्बन डाई ऑक्साइड तथा शेष निष्क्रिय गैसें होती हैं। इनके अतिरिक्त मौसम के अनुसार जलवाष्प भी पाये जाते हैं। ऑक्सीजन जीवधारियों के लिए अति आवश्यक गैस है। स्थलीय एवं जलीय प्राणियों का श्वसन ऑक्सीजन से होता है। यही ऑक्सीजन आन्तरिक श्वसन में कार्बोहाइड्रेट या शर्करा का उपापचय करके जैविक कार्यों के लिए ऊर्जा (ATP) उत्पन्न करती है। ऑक्सीजन स्थलीय और जलीय जन्तुओं के लिए एक महत्त्वपूर्ण सीमांतकारी कारक है।

(1) जल चक्र (The Water Cycle)

जल जीवन के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण घटक है। किसी जीव के शारीरिक-भार का औसतन 70 प्रतिशत भाग जल से परिपूर्ण होता है। जल एक महत्त्वपूर्ण पारिस्थितिकी कारक है, जिस पर पारितंत्र की संरचना एवं उसकी कार्य प्रणाली निर्भर करती है। इसके साथ ही जल पर अन्य तत्वों के चक्र भी निर्भर होते हैं, क्योंकि विभिन्न चरणों में अन्य तत्वों का परिवहन माध्यम भी जल ही है और जीवों द्वारा ग्रहण किए जाने वाले तत्वों के लिए भी यह एक विलायक माध्यम है।

जल चक्र के अंतर्गत पृथ्वी का अनंत जल एकत्र, शुद्ध और परिसंचरित होता है। वर्षा होने पर पानी भूमि पर बहता है और नदियों की ओर प्रवाहित होता हुआ सीधे समुद्र में जाकर गिरता है। धरती पर गिरने वाले जल का कुछ भाग रिसकर भूमि के भीतर चला जाता है और भूमिगत जल के जलवाही स्तरों को फिर से भरता है। भू-पृष्ठ का लगभग 75% भाग झीलों, नदियों, सागरों तथा महासागरों के रूप में जल से घिरा है। अकेले महासागरों में ही पृथ्वी के सम्पूर्ण जल का 95% भाग निहित है, शेष जल का एक बड़ा हिस्सा ध्रुवीय हिम तथा ग्लेशियरों के रूप में पाया जाता है।

जलीय चक्र का अनुक्रम:-

- महासागरों से वाष्पित होकर जल वायुमण्डल में जाता है।
- वायुमण्डल में जल का संघनन होता है तथा पुन: वर्षा एवं हिमपात के रूप में यह स्थल तक आता है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com

➢ पुनः इसका एक भाग रिसकर भूमि के भीतर चला जाता है तथा इसे भूगर्भीय जल के रूप में प्राप्त किया जाता है। स्मरणीय है कि यह चक्र सौर ऊर्जा द्वारा चलता रहता है, जिसमें लगभग $10 x 10^{20}$g जल सम्मिलित होता है।

कार्बन चक्र (Carbon Cycle)

कार्बनिक यौगिकों में मौजूद कार्बन पारितंत्र अजैविक और जैविक दोनों घटकों में पाया जाता है। कार्बन पौधों और प्राणियों, दोनों के ऊतकों का निर्माणकारी तत्त्व है। कार्बन-चक्र कार्बन-डाईऑक्साइड गैस (CO_2) पर आधारित है। पृथ्वी के पारितंत्र में CO_2 को वायुमण्डल से और जलीय पारितंत्र में CO_2 को जल से निकाल दिया जाता है।

नाइट्रोजन चक्र (Nitrogen Cycle)

नाइट्रोजन एमिनो अम्लों, प्रोटीन एवं न्यूक्लिक अम्लों, हॉर्मोनों, क्लोरोफिल एवं अनेक विटामिनों का एक संघटक है। वायुमंडल में मौजूद नाइट्रोजन (N_2) को पेड़-पौधे और जीव-जंतु पोषक तत्त्व के रूप में प्रत्यक्ष रूप में प्रयोग नहीं कर सकते। इसे अमोनिया (NH_3), नाइट्रेट या नाइट्राइट के यौगिक के रूप में बदलना जरूरी होता है। यह क्रिया चार चरणों में पूरी होती है-

नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करने वाले जीवाणु कुछ पादप प्रजातियों; जैसे-फली, मटर और अल्फा-अल्फा की जड़ों की ग्रंथिकाओं में बढ़ते हैं और नाइट्रोजन को स्थिर करते हैं। बाद में यह नाइट्रोजन अमोनिया में परिवर्तित हो जाती है, जिसका प्रयोग पौधे करते हैं, शेष बचे अप्रयुक्त अमोनिया का नाइट्रीकरण हो जाता है।

ऑक्सीजन चक्र (Oxygen Cycle)

पौधे श्वसन क्रिया के दौरान वायुमण्डल से ऑक्सीजन ग्रहण करते हैं और वे प्रकाश-संश्लेषण के दौरान वायुमण्डल को ऑक्सीजन लौटा देते हैं। स्थलीय जीव वायुमण्डल से तथा जलीय जीव जल से ऑक्सीजन प्राप्त करते हैं। प्रकाश-संश्लेषण के तहत उत्सर्जित ऑक्सीजन सूक्ष्म जीवों, पादपों व जंतुओं द्वारा श्वसन के उपयोग में लायी जाती है। सामान्यतः जितनी ऑक्सीजन उपयोग में लायी जाती है, लगभग उतनी ही वातावरण में उत्पन्न होती है। इस प्रकार इसकी मात्रा स्थिर बनी रहती है। ऑक्सीजन का निश्चित अनुपात बनाये रखने के लिए प्रकृति में निरंतर ऑक्सीजन-चक्र चलता रहता है।

फॉस्फोरस-चक्र (Phosphorus Cycle)

फॉस्फोरस तत्त्व न्यूक्लिक अम्ल, फॉस्फोलिपिड्स एवं अन्य ऊर्जा संग्राहक अणुओं का महत्त्वपूर्ण अवयव है। फॉस्फो. रस-चक्र जैव-रासायनिक चक्र है, जो लिथोस्फियर, हाइड्रोस्फियर और जीवमंडल के माध्यम से फॉस्फोरस के चक्र का वर्णन करता है। पौधे सीधे मृदा से या जल से प्रत्यक्ष रूप से फॉस्फोरस प्राप्त करते हैं। यदि मृदा में फॉस्फोरस पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न हो, तो यह पौधों की वृद्धि के लिए एक सीमाकारी कारक होता है और इसे संतुलित करने के लिए मृदा में उर्वरक के रूप में बाहर से फॉस्फोरस डालना पड़ता है।

पारिस्थितिकी तंत्र में ऊर्जा प्रवाह

- ऊर्जा का चक्र पारितंत्र में ऊर्जा के प्रवाह पर आधारित होता है। पौधे सूर्य की ऊर्जा को वृद्धिमान नई वस्तुओं में बदल देते हैं, जिनमें पौधों के पत्ते, फूल, शाखाएँ, तने और जड़ें शामिल हैं। समस्त जीवन प्रक्रियाओं में जितनी भी ऊर्जा उपयोग की जाती है, वह सौर ऊर्जा से प्राप्त होती है। सौर ऊर्जा का प्रवाह एकदिशीय होता है। इसका अर्थ यह है कि यदि सौर्यिक ऊर्जा प्रवाह अवरूद्ध हो जाये, तो पारितंत्र समाप्त हो जाएगा।

ऊर्जा का एक लगातार प्रवाह बना रहता है, जो सूर्य से प्रारम्भ होकर विविध जीवों से गुजरता हुआ अंततः बाह्य अंतरिक्ष में पहुँच जाता है। यही प्रक्रिया पृथ्वी पर जीवन को संचालित करती है। गहरे सागरीय जल की तापीय पारिस्थितिकी के अपवाद को छोड़कर पृथ्वी पर विद्यमान समस्त ऊर्जा का प्राथमिक स्रोत सूर्यातप है, जो अनवरत रूप से सूर्य से पृथ्वी की ओर विद्युत-चुम्बकीय तरंगों (Electromagnetic Waves) के रूप में आ रहा है। इस प्रकाश के सहारे हरे पौधे, जिनकी कोशिकाओं में क्लोरोफिल होता है, बहुत ही विषम जैविक पदार्थ का निर्माण करते हैं, जैसे-कार्बोहाइड्रेट। इस प्रक्रिया को प्रकाश-संश्लेषण कहा जाता है।

रासायनिक ऊर्जा की कुल मात्रा पारिस्थितिकी तंत्र द्वारा निर्धारित की जाती है। अतः पादप ही पारिस्थितिकी तंत्र में प्राथमिक उत्पादक की भूमिका निभाते हैं। प्रत्येक पारितंत्र में अनेक परस्पर सम्बद्ध व्यवस्थाएँ होती हैं, जो मानव जीवन को प्रभावित करती हैं।

आहार श्रृंखला (Food Chain)

जब प्राकृतिक पारितंत्र में आहार पोषण सम्बन्ध अत्यधिक जटिल हो जाते हैं, तो आहार श्रृंखला सरल एवं रैखिक नहीं रह पाती है, बल्कि अत्यधिक जटिल हो जाती है। इस तरह की आहार श्रृंखला को आहार जाल कहते हैं। आहार ग्रहण करने और आहार बन जाने की प्रक्रिया में ऊर्जा का प्रवाह एक पोषण स्तर से दूसरे पोषण स्तर में होता है। लेकिन पोषण स्तर पाँच या छः स्तरों से अधिक नहीं हो सकता क्योंकि ऊर्जा स्थानांतरण बहुत कार्यक्षम नहीं होता। ऊर्जा सतत् प्रवाहित होती रहती है, इसलिए पारिस्थितिकी तंत्र पूरी तरह से सौर ऊर्जा के सतत् निवेश पर निर्भर होता है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

स्थलीय पारितंत्र, जैसे- परिपक्व वन में, वृक्षों एवं पौधों द्वारा उत्पादित जैविक पदार्थ का कुछ हिस्सा शाकाहारी जीव खा लेते हैं, परंतु इस पदार्थ का 90 प्रतिशत तक हिस्सा पत्तियों के रूप में जमीन पर गिर जाता है, जो वियोजकों का भोजन बनता है, अर्थात् वह अवशिष्ट आहार शृंखला में समाविष्ट हो जाता है। जलीय पारिस्थितिकी तंत्र में अधिकाँश ऊर्जा आहारशृंखला के माध्यम से प्रवाहित होती है। जलीय आहार शृंखला में प्रायः पोषण स्तरों की संख्या स्थलीय आहार शृंखला की तुलना में अधिक होती है।

ग्राफ आहार शृंखला

आहार शृंखला की अवधारणा से दो महत्त्वपूर्ण ऊर्जा सिद्धान्त उत्पन्न होते हैं:-

प्रथमः- समस्त जीवन और सभी प्रकार की खाद्य शृंखला का प्रारम्भ सूर्य, प्रकाश और हरे पादपों से होता है।

दूसराः- खाद्य शृंखला जितनी छोटी होती है, उतनी ही उपयोगी ऊर्जा की क्षति कम होती है अर्थात् मानव या अन्य जीवों की एक बड़ी जनसंख्या का पोषण एक बड़ी माँस आधारित खाद्य शृंखला के बजाय, एक छोटी पादप आधारित खाद्य शृंखला द्वारा हो सकता है।

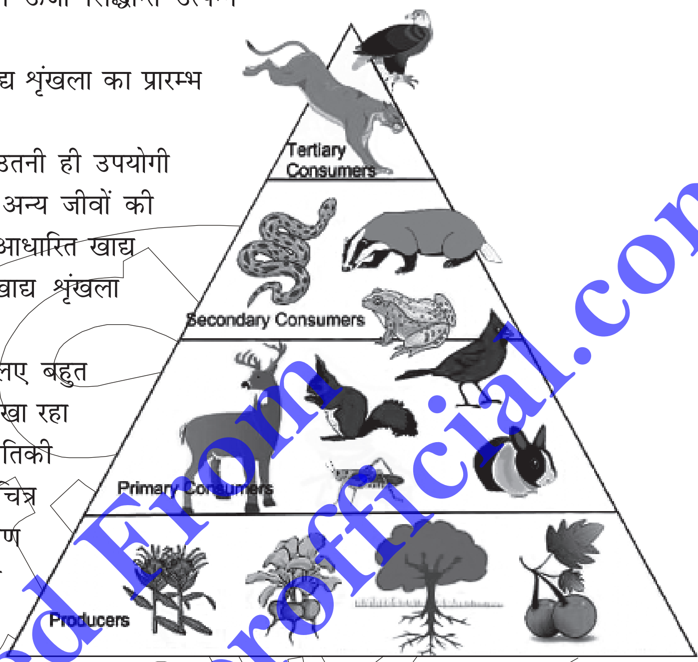

खाद्य-शृंखला की अवधारणा यह जानने के लिए बहुत उपयोगी है कि पारिस्थितिकी तंत्र में कौन, किसे खा रहा है या वियोजित कर रहा है, परंतु इससे पारिस्थितिकी तंत्र में घटित हो रही घटनाओं का विशुद्ध चित्र नहीं प्राप्त होता है। अधिकाँश जीव समान पोषण स्तर पर ही अलग प्रकार के खाद्य ग्रहण करते हैं। इसके अतिरिक्त सर्वाहारी-जैसे मानव, चूहे, भालू आदि अन्य अनेक प्रकार के पौधे और जीवों को कई पोषण स्तरों पर खा सकते हैं।

आहार शृंखला के प्रकार (Types of food chain)

प्रकृति में मुख्य रूप से दो प्रकार की खाद्य शृंखलाएँ पायी जाती हैं-

(i) चारण खाद्य शृंखला (Grazing food chain)

वे उपभोक्ता, जो भोजन के रूप में पौधों अथवा पौधों के भागों का उपयोग करके खाद्य शृंखला आरम्भ करते हैं, चारण खाद्य शृंखला निर्मित करते हैं। यह हरे पौधों से प्रारम्भ होती है तथा प्राथमिक उपभोक्ता शाकभक्षी होता है, उदाहरण के लिए-

घास → टिड्डा → पक्षीगण → बाज अथवा अन्य शिकारी

(ii) अपरद खाद्य शृंखला (Detritus food Chain)

यह खाद्य शृंखला क्षय होते प्राणियों एवं पादप शरीर के मृत जैविक पदार्थ से आरम्भ होकर सूक्ष्म जीवों में जाती है और फिर वहाँ से अपरद खाने वाले जीवों में जाती है, जिन्हें अपरदभक्षी अथवा विघटक कहते हैं और फिर वहाँ से अन्य परभक्षियों में पहुँचती है। उदाहरण के लिए-

कचरा → स्प्रिंगटेल (कीट) → छोटी मकड़ियाँ (माँसभक्षी)

इन दो खाद्य शृंखलाओं के बीच का अंतर प्रथम स्तर पर उपभोक्ताओं के लिए ऊर्जा का स्रोत है। चारण खाद्य शृंखला में ऊर्जा का प्राथमिक स्रोत सजीव पादप जैवसंहति हैं, जबकि अपरद आहार शृंखला में ऊर्जा का स्रोत मृत जैविक पदार्थ अर्थात् अपरद हैं।

आहार जाल (Food Web)

एक पारितंत्र में बड़ी संख्या में परस्पर संबंधित शृंखलाएँ होती हैं, जो मिलकर खाद्य-जाल बनाती हैं। वस्तुतः खाद्य शृंखला से पारितंत्र में होने वाले खाद्य ऊर्जा प्रवाह का केवल एक ही पहलू प्रस्तुत होता है। इसका अर्थ यह है कि जीवों में एक सीधा, सरल और विशिष्ट संबंध होता है, जो पारितंत्रों में शायद ही कभी होता है।

पारितंत्र के भीतर अनेक परस्पर संबंधित खाद्य शृंखलाएँ हो सकती हैं। अधिकांशतः ऐसे पारितंत्र में खाद्य संसाधन एक से अधिक शृंखलाओं का अंश हो सकता है, विशेषकर तब जब वह संसाधन किसी एक निम्नतर पोषण स्तर पर हो। उदाहरण के लिए, एक ही पादप एक ही समय अनेक शाकभक्षियों का आहार हो सकता है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com

खाद्य शृंखला एवं खाद्य जाल में अन्तर (Difference between food chain and food web)

पारिस्थितिकीय पिरामिड (Ecological Pyramid)

एक पारितंत्र में हरे पौधे सूर्य से सीधे ऊर्जा ग्रहण करके उसे भोज्य पदार्थ में बदलते हैं। ऐसे पौधे खाद्य पिरामिड के एकदम बुनियादी या प्रथम खाद्य स्तर पर होते हैं और प्राथमिक उपभोक्ता कहलाते हैं।

खाद्य पिरामिड के शीर्ष पर थोड़े से ही माँसाहारी प्राणी होते हैं, जो तृतीय खाद्य स्तर (Third trophic level) के होते हैं। जीवित प्राणी ऊर्जा का उपयोग इसी क्रम में करते हैं और पारितंत्र के आधार से लेकर शीर्ष तक ऊर्जा का प्रवाह इसी प्रकार होता है। अध्ययन की सुविधा के लिए पारिस्थितिकी पिरामिड को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है-

(i) संख्या पिरामिड (Pyramid of Numbers)

प्राथमिक उत्पादकों और विभिन्न स्तर के उपभोक्ताओं की संख्याओं के मध्य अन्तर्सम्बंध के आरेखीय निरूपण को संख्या पिरामिड कहते हैं। इसमें पारितंत्र के प्रत्येक पोषण स्तर पर स्थित उन विभिन्न प्रजातियों की कुल संख्या का लेखाचित्र होता है। इसके आधार पर प्राथमिक उत्पादक (संख्या में सर्वाधिक) होते हैं तथा शीर्ष पर माँसभक्षी (संख्या में सबसे कम) उपभोक्ता स्थित होते हैं।

ध्यातव्य है कि कुछ विशिष्ट प्रकार के पारितंत्र में प्राथमिक उपभोक्ताओं की संख्या तथा जीव भार प्राथमिक उत्पादकों की तुलना में अधिक होता है। ऐसे पारितंत्रों में संख्या पिरामिड उलट जाता है, जिसे व्युत्क्रमित या उल्टा पिरामिड कहा जाता है।

साधारण शब्दों में कहा जाये तो उत्तरोत्तर पोषण स्तर के जीवों की संख्या के अनुपात को प्रदर्शित करने वाला पिरामिड जीव संख्या का पिरामिड कहलाता है, ऐसे पिरामिड के आधार पर उत्पादकों की संख्या सर्वाधिक और प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय उपभोक्ताओं की संख्या क्रमशः कम होती जाती है और पिरामिड ऊर्ध्ववर्ती निर्मित होता है, जैसे-घास के मैदान, खेत एवं तालाब के जीव संख्या के पिरामिड।

(ii) जैव भार का पिरामिड (Pyramid of bio-Mass)

एक खाद्य शृंखला के उत्तरोत्तर पोषण में जीवों के संपूर्ण जैव भार के अनुपात को प्रदर्शित करने वाले पिरामिड को जैव भार का पिरामिड कहते हैं। एक स्थलीय पारितंत्र के जैव भार के पिरामिड सदैव सीधे बनते हैं क्योंकि उत्पादकों का जैव भार सबसे अधिक होता है।

(iii) ऊर्जा का पिरामिड (Pyramid of Energy)

पारितंत्र में ऊर्जा का पिरामिड हमेशा सीधा ही बनता है क्योंकि उत्पादकों से प्रत्येक उपभोक्ता स्तर पर कुछ मात्रा धीरे-धीरे कम होती जाती है।

किसी पारितंत्र के विभिन्न-पोषण स्तरों की कार्यात्मक भूमिकाओं की तुलना हेतु सर्वाधिक उपयोगी ऊर्जा पिरामिड ही होते हैं। ध्यातव्य है कि ऊर्जा पिरामिड ऊष्मागतिकी के नियमों का पालन करता है। इस पिरामिड के द्वारा प्रत्येक पोषण स्तर पर होने वाले सौर्यिक ऊर्जा के रासायनिक ऊर्जा तथा ऊष्मा ऊर्जा में परिवर्तन को प्रदर्शित किया जाता है।

पारिस्थितिक दक्षता (Ecological Efficiency)

पारितंत्र में पारिस्थितिकीय दक्षता का तात्पर्य जीवों द्वारा एक पोषण स्तर से दूसरे पोषण स्तर तक ऊर्जा के स्थानांतरण से है। पारितंत्र की पोषण संरचना में क्रमशः प्रत्येक चरण में पोषण स्तर में ऊर्जा का ह्रास होता है। इस ऊर्जा ह्रास के लिए दो कारक उत्तरदायी माने गए हैं- प्रथम यह कि प्रत्येक पोषण स्तर में उपलब्ध ऊर्जा के एक भाग का श्वसन अथवा उपापचय क्रियाओं में नष्ट हो जाना तथा द्वितीय, पोषण रूपांतरण में ऊर्जा की एक निश्चित मात्रा का ह्रास है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

4. जैव-विविधता

जैव विविधता क्या है?

वैज्ञानिक शब्दों में जैव विविधता जीन्स (Genes), जातियों (Species) और पारिस्थितिक तंत्रों (Ecosystems) की समग्रता है। सामान्य शब्दों में, जैव विविधता से आशय किसी निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में पायी जाने वाली भिन्न-भिन्न प्रजातियों के जंतुओं तथा पौधों की संख्या और उनकी विविधता से है। जैव-विविधता के अंतर्गत न सिर्फ एक प्रजाति के अंतर्गत पायी जाने वाली विविधताएँ सम्मिलित की जाती हैं, अपितु विभिन्न प्रजातियों के मध्य अंतर और पारिस्थितिकीय तंत्रों के मध्य तुलनात्मक विविधता भी शामिल की जाती है। जैव-विविधता के तीन तत्व हैं-

- **सम्पूर्ण जीन्स (Total genes)** इसे आनुवंशिक विविधता (genetic diversity) भी कहते हैं, यह जाति के अंदर हुए जीन्स परिवर्तनों को व्यक्त करती है। इसके अंतर्गत एक ही प्रजाति की विभिन्न समष्टियों (जैसे- भारत में परंपरागत चावल की हजारों किस्मों और समष्टियों) के भीतर ही आनुवंशिक परिवर्तन शामिल होते हैं।
- **सम्पूर्ण जातियाँ या प्रजातीय विविधता (Species diversity):-** यह किसी क्षेत्र में जातियों की किस्मों को व्यक्त करता है। उदाहरणार्थ, किसी द्वीप में 115 जातियाँ हैं, जिसमें पक्षियों की 10 जातियाँ, मृगों की 100 जातियाँ, छिपकली की 5 जातियाँ आदि संख्यात्मक अभिव्यक्ति के अतिरिक्त इन्हें गुणवत्ता के आधार पर भी प्रदर्शित किया जाता है। द्वीप 'अ' में द्वीप 'ब' की अपेक्षा अधिक वर्गीकृत विविधता (greater taxonomic diversity) पायी जाती है।
- **पारिस्थितिक तंत्र विविधता (Ecosystems diversity):-** इसका तात्पर्य जातियों अथवा समुदायों की जेनेटिक विविधता से है। यह विभिन्न पर्यावरणीय दशाओं में प्रजातियों के समुदायों की सामूहिक प्रतिक्रिया की द्योतक है। जीवों के समूह एवं उनके अजैविक पर्यावरण तथा उनकी अंतर्क्रिया मिलकर कार्यात्मक, गतिशील एवं जटिल इकाईयों का निर्माण करते हैं, जिन्हें पारिस्थितिक तंत्र कहते हैं। प्रजातियों एवं उनकी भौतिक दशाओं के विविध संयोजक तथा उनकी विविध अंतर्क्रिया के द्वारा विविध प्रकार के पारिस्थितिक तंत्रों की रचना होती है। उदाहरण के लिए, एक प्रवाल तंत्र और एक उष्णकटिबंधीय वन के पारिस्थितिक तंत्रों में भारी अंतर होता है।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि एक प्रजाति दूसरी प्रजाति के साथ जनन नहीं करते। प्रजातियों का मापन सीधे गणना द्वारा या उनकी संख्या के अनुमान द्वारा किया जाता है।

जैव-विविधता के स्तर: (Stratification of Bio- diversity):- पृथ्वी पर जीवों, वनस्पतियों आदि में विविधता प्रकृति की अनुपम अनुकृति है। इसका बाह्य स्वरूप एक विशिष्ट इकाई में है, जबकि आंतरिक स्वरूप अनेक स्तरों में विभाजित है। सभी स्तर एक जटिल तंत्र के रूप में आबद्ध हैं। जैव विविधता को निम्नांकित तीन महत्त्वपूर्ण स्तरों में विभाजित किया जाता है-

- आनुवंशिक जैव विविधता (Genetic Diversity)
- प्रजातीय जैव विविधता (Species Diversity)
- पारितंत्रीय जैव-विविधता (Ecosystem Diversity)

आनुवंशिक जैव-विविधता (Genetic Bio-Diversity)

एक ही प्रजाति के विभिन्न जीवों में जीनों के क्रम की भिन्नता के कारण जो विविधता उत्पन्न होती है, उसे आनुवंशिक जैव विविधता कहते हैं। आनुवंशिक विविधता किसी प्रजाति के प्रत्येक सदस्य में विशिष्ट लक्षण एवं विशेषताओं का समावेश करती है। मानव आनुवंशिक रूप से होमोसेपियन्स प्रजाति से संबंधित है तथा इनमें कद, रंग और शारीरिक रूप आदि लक्षणों में काफी भिन्नता पायी जाती है। इसका कारण आनुवंशिक विविधता ही है।

वन्य प्रजातियों की यह विविधता ही वह जीन कोष (Gene Pool) है, जिसमें हजारों वर्षों से फसलों और पालतू पशुओं का विकास है। यह विविधता केन्द्र में निहित जीनों, क्रोमोसोम विपथनों एवं द्रव्यजीनों (Plasmagenes) के कारण उत्पन्न होती है। जीव समूहों और पारिस्थितिकी घटकों में जब परिवर्तन होने लगता है, तब यह विविधता एक ऐसी क्षमता उत्पन्न करती है, जिससे जैव-विविधता पुन: अपना मौलिक रूप धारण कर लेती है। कभी-कभी एक समूह के अनेक महत्त्वपूर्ण जीन प्राकृतिक घटनाओं अथवा अन्य कारणों से नष्ट हो जाते हैं। ऐसी दशा में जीन अपने समूह को पुनर्जीवित कर देते हैं। दूसरे शब्दों में कहे तो आनुवंशिक विविधता विशिष्ट जीव या संपूर्ण प्रजाति को बदलते पर्यावरण

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

से अनुकूलन में सहायता करती है और पर्यावरणीय कारकों में दबाव की स्थिति में संपूर्ण प्रजाति के विलुप्त होने के खतरे को कम करती है।

प्रजातीय जैव-विविधता (Species Bio-Diversity)

प्रजाति विविधता से तात्पर्य एक विशेष पारिस्थितिक तंत्र में प्रजातियों की संख्या अथवा समूहों से है, जो अलग-अलग प्रजाति के जीवों में आनुवंशिक अनुक्रम में स्पष्ट रूप से भिन्नता होती है और उनके बीच प्रजनन क्रिया नहीं होती है। यद्यपि निकट से संबंधित प्रजातियों के आनुवंशिक गुणों में बहुत अधिक समानता होती है। प्रजातीय विविधता को निम्नांकित प्रकार से मापा जा सकता है-

वर्गीकीय विविधता:- यह प्रजातियों के विभिन्न समूहों के मध्य आनुवंशिक संबंध को दर्शाती है।

प्रजातीय समृद्धि (Species Richness)

यह एक निश्चित क्षेत्र में विभिन्न प्रजातियों की संख्या को दर्शाता है।

यहाँ यह स्मरणीय है कि विभिन्न प्रकार की प्रजातियों की उपस्थिति से उनके द्वारा प्राप्त होने वाले लाभों में वृद्धि होती है। जैसे व्यावसायिक लाभ के उद्देश्य से इमारती लकड़ी प्राप्त करने के लिए लगाए गए वन से हमें सिर्फ लकड़ियाँ प्राप्त हो सकती हैं, जबकि विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधे एवं प्राणियों से समृद्ध वन, फल, चारा, गोंद व रेजिन तथा औषधियाँ आदि प्राप्त कर सकते हैं।

पारितंत्रीय जैव-विविधता (Ecosystem Bio Diversity)

पारितंत्रीय या पारिस्थितिक विविधता का आशय किसी भौगोलिक क्षेत्र में पारितंत्रीय विविधता से है। विश्व में विभिन्न प्रकार के पारिस्थितिक तंत्र हैं, जिनमें वन, घास के मैदान, मरुस्थल, पर्वत, नदी, झीलें, समुद्र आदि प्रमुख हैं। हालांकि, पारितंत्रीय विविधता का मापन अथवा परिसीमन करना अत्यन्त जटिल है क्योंकि समुदायों में (प्रजातियों का समूह) पारितंत्र की सीमाओं को कठोरतापूर्वक निर्धारित नहीं किया गया है। पारितंत्रों में विभिन्न बदलावों के परिणामस्वरूप, प्रजातियों के मध्य अस्तित्व का संघर्ष उपस्थित होने लगता है। ऐसे में जो सर्वाधिक श्रेष्ठ तरीके से स्वयं को अनुकूलित कर लेती है, केवल वही प्रजाति बचती है।

जैव-विविधता का मापन (Measurment of Bio-Diversity)

प्रजातीय संपन्नता का प्रजातीय विविधता के मापन के लिए सर्वाधिक प्रयोग होता है। सामान्य शब्दों में देखें तो यह किसी क्षेत्र में प्रजातियों की कुल संख्या की माप है। प्रजातीय संपन्नता (Species Richness) को चार वर्गों में विभाजित करते हैं-

(a) **बिन्दु संपन्नता (Point richness):-** इसमें पृथ्वी पर किसी एक बिन्दु पर पायी जाने वाली प्रजातियों की संख्या को दर्शाया जाता है।

(b) **अल्फा विविधता:-** इसका तात्पर्य एक विशेष क्षेत्र, समुदाय या पारिस्थितिक तंत्र के अंतर्गत जीवों के ऐसे समूह से है, जो एक ही पर्यावरण के अंतर्गत निवास कर रहे हैं। या एक समान स्रोतों के लिए पारस्परिक क्रिया अथवा प्रतिस्पर्द्धा करते हैं। इसका मापन पारिस्थितिकी तंत्र में मौजूद प्रजातियों की संख्या से किया जाता है।

(c) **बीटा विविधता:-** यह विभिन्न प्रजाति आवासों के बीच प्रजातियों के संगठन में परिवर्तन की दर का द्योतक है। इसके अंतर्गत पारिस्थितिक तंत्र के भीतर या तंत्रों के बीच, जैव-विविधता में होने वाले परिवर्तनों का वर्ण बीटा-विविधता कहलाता है। स्मरणीय है, कि बीटा-विविधता का मापन समय के विभिन्न बिन्दुओं पर दो अलग-अलग आवासों के बीच या एक ही समुदाय के भीतर प्रजातिगत समृद्धि में अंतर इंगित करता है। इसके अंतर्गत उन प्रजातियों की संख्या की तुलना की जाती है। जो प्रत्येक पारिस्थितिकी तंत्र में विशिष्ट रूप से पाई जाती है।

(d) **गामा संपन्नता:-** यह किसी विस्तृत भू-दृश्य प्रवणता के बीच प्रजातियों में परिवर्तन की दर को दर्शाती है और यह किसी क्षेत्र में विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रों की सकल विविधता का मापन करती है।

जैव-विविधता का स्वरूप:-

सामान्यत: ऐसा माना जाता है कि जैव-विविधता का जो वर्तमान स्वरूप हमें दिखाई पड़ता है, वह 2.5 से 3.5 अरब वर्षों में विकसित हुआ है। वैश्विक स्तर पर प्रजातियों की संख्या 2 मिलियन से 100 मिलियन के बीच भिन्न-भिन्न स्थानों पर अलग-अलग है। इनमें से 10 मिलियन प्रजातियों की पहचान की जा चुकी है। जैव-विविधता पृथ्वी पर समान रूप से प्राप्त नहीं होती है। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि उष्णकटिबन्धीय क्षेत्र अपनी विशिष्ट पर्यावरणीय दशाओं के कारण जैव-विविधता की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध हैं तथा ध्रुवों की ओर जाने पर इसका ह्रास होता जाता है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS WORLD Committed to Excellence

अक्षांशीय प्रवणता के आधार पर जैव-विविधता:-

प्रायः यह देखा जाता है कि जैसे-जैसे हम विषुवत् रेखा से ध्रुवों की ओर बढ़ते हैं, तो जैव विविधता में ह्रास होता दिखाई देता है। विषुवत् रेखा (0 डिग्री) से $23\frac{1}{2}$ डिग्री उत्तरी अक्षांश तथा $23\frac{1}{2}$ डिग्री दक्षिणी अक्षांश के मध्य जैव विविधता की सघनता अधिक है। उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में स्थित अमेजन बेसिन, इक्वाडोर तथा कांगो बेसिन जैसे वनों में, उसके समान क्षेत्रफल वाले संयुक्त राज्य अमेरिका के मध्य-पश्चिम के शीतोष्ण क्षेत्र की तुलना में 10 गुना अधिक संवहनीय (Vascular) पौधों की प्रजातियाँ पाई जाती हैं।

जैव-विविधता का महत्त्व

जैव-विविधता पर्यावरण तथा मानव दोनों के लिए महत्त्वपूर्ण है। जैव-विविधता ने मानव संस्कृति के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, जिसके बदले मानव समुदाय ने भी आनुवंशिक, प्रजातीय व पारितंत्रीय स्तरों पर प्राकृतिक विविधता को बढ़ावा देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके अतिरिक्त जैव-विविधता हमारे लिए खाद्य पदार्थों, औषधियों, सौन्दर्यात्मक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। जैव-विविधता के महत्त्व को हम निम्नांकित रूप में वर्गीकृत करके देख सकते हैं-

(i) चिकित्सा क्षेत्र एवं जैव-विविधता:-

वर्तमान वैज्ञानिक एवं उच्च तकनीकि युग में अधिकांश वस्तुएँ प्रयोगशालाओं में संश्लेषित की जा रही हैं, आधुनिक औषधियों का अधिकांश भाग जो रोगियों को दिया जा रहा है, वह जैविक उत्पत्ति की ही देन है। असंख्य जीवन रक्षक औषधियाँ, पुष्पित पौधों से वियुक्त की जाती हैं।

कुनैन सिनकोना वृक्ष की छाल से प्राप्त करके मलेरिया के इलाज में प्रयुक्त किया जाता है। फॉक्सग्लव पौधे से डिजिटेलिस नामक मेडिसिन प्राप्त करके पुराने हृदय रोग की चिकित्सा के उपयोग में लायी जाती है। मॉरफीन और कोकीन क्रमशः पोस्ते और कोको की झाड़ियों से प्राप्त की जाती हैं, तो श्वेतरक्तता और कैंसर जैसे गंभीर रोग के साथ-साथ अनेक प्रकार के हृदय रोगों की चिकित्सा के लिए उपयोग में लाई जाती हैं। टेक्सॉल (Taxol) अति आधुनिक खोज है। यह एक प्रकार का रसायन है, जो इयू (Yew) नामक वृक्ष की छाल से प्राप्त किया जाता है। टेक्सॉल अण्डाशी कैंसर की चिकित्सा में बहुत कारगर है।

(ii) कृषि के क्षेत्र में:- जैव-विविधता का महत्त्व विशेष रूप से कृषि क्षेत्र में स्पष्ट होता है। शताब्दियों से मानव ने उत्पादन को स्थायित्व प्रदान करने और उसे बढ़ाने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की फसलें और पशुधन कृत्रिम रूप से पैदा करने का प्रयास किए हैं। इन परंपरागत प्रक्रियाओं के कारण विभिन्न प्रकार के आनुवंशिक रूप से विकृत पौधों की फसलें पैदा की गई हैं, जो अब परित्यक्त की जा रहीं हैं और उनके स्थान पर नई उच्च उत्पादक फसलें पैदा की जा रही हैं। हालांकि, यह नयी उच्च उत्पादी फसलें आनुवंशिक रूप से सजातीय हैं, और उनका आनुवंशिक आधार सीमित है। ये कीटनाशकों और विभिन्न रोगों के विरुद्ध अत्यंत असुरक्षित हैं। उदाहरणार्थ, जो विवृत चावल मुख्य रूप से एशिया में पैदा होता है, जो वायरस के कारण तबाह हो गया, किंतु एक भारतीय जंगली विवृत ऐसी भी हैं, जिसमें प्रतिरोध की आनुवंशिक विशेषता पायी जाती है। गहन प्रजनन के द्वारा एक प्रतिरोधी संकर चावल उत्पन्न कर लिया गया, जो अब बड़े पैमाने पर पैदा किया जाता है। ये उदाहरण उच्च कृषीय पैदावार के लिए आनुवंशिक विविधता या जीनपूल्स के महत्त्व को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करते हैं।

जैव-विविधता एवं खाद्य आपूर्ति:-

जैव-विविधता हमारी खाद्य आपूर्ति का अनिवार्य घटक है। हाल के शोधों से यह पता चला है कि 4 लाख ज्ञात पादप प्रजातियों में से 80 हजार खाने योग्य हैं और वर्तमान समय में केवल 150 का ही उपयोग किया जा रहा है। वैश्विक खाद्य संसाधन का 90 प्रतिशत भाग के आपूर्ति मात्र 15 प्रजातियों द्वारा होती है और उनमें से तीन-गेहूँ, चावल और आलू 25 प्रतिशत से अधिक खाद्य आपूर्ति करते हैं।

जैव-विविधता और प्राकृतिक उत्पाद:-

मानव सभ्यता के आरम्भ से ही जैविक संसाधनों का उपयोग विभिन्न आवश्यकताओं की प्रतिपूर्ति के लिए किया जाता है। अनेक पौधे एवं प्राणी ऐसे उत्पाद उत्पन्न करते हैं, जो अपनी विशिष्ट भौतिक विशेषताओं के कारण मानव के लिए उपयोगी साबित हुए हैं। इसके अंतर्गत हम बहुमूल्य रेशे प्रदान करने वाले पादपों एवं वनस्पतियों को देख सकते हैं, जैसे-कपास तथा रेशम प्रदान करने वाले पादपों को देख सकते हैं। इसी प्रकार वनस्पति तेल व घी इत्यादि को देख सकते हैं।

वैज्ञानिक महत्त्व:-

वैज्ञानिक दृष्टि से भी जैव-विविधता काफी महत्त्व रखती है क्योंकि प्रत्येक प्रजाति हमें यह संकेत दे सकती है कि

Downloaded From www.studymasterofficial.com
Committed to Excellence

जीवन का आरम्भ कैसे हुआ और यह भविष्य में कैसे विकसित होगा। किसी पारितंत्र का निर्माण किन घटकों तथा कारकों के संसर्ग में हुआ है। इसका निर्धारण वहाँ निहित जैव-विविधता के वैज्ञानिक अनुसंधान द्वारा किया जा सकता है।

उद्योग के क्षेत्र में:-

उद्योग भी विभिन्न प्रकार के पादप और प्राणी उत्पादों का उपयोग करके प्रजातियों की मूल्यांकन विविधता से लाभान्वित हो रहे हैं। संपूर्ण विश्व में लगभग 2000 पादप प्रजातियाँ अपने आर्थिक महत्त्व के लिए जानी जाती हैं। भवन, उपस्कर और कागज निर्माण उद्योग, सौ से अधिक वृक्षों की प्रजातियों का उपयोग करते हैं। कपास, अलसी, जूट और एगेव निर्माण, रस्सी आदि बनाने के लिए रेशों के स्रोत हैं। अनेकों प्रकार की पादप प्रजातियों से प्राप्त प्राकृतिक वस्तुओं का उपयोग रबर, रंगों, चर्म शोधन कारकों कीटनाशकों आदि उत्पादों को तैयार करने में किया जाता है।

सांस्कृतिक महत्त्व:-

जैव-विविधता विभिन्न संस्कृतियों में अलग-अलग दृष्टिकोण से महत्त्व रखती है। प्राकृतिक विविधता हमें सौन्दर्यात्मक आनंद प्रदान करती है। समृद्ध जैव-विविधता किसी क्षेत्र में पर्यटन को प्रोत्साहित करती है तथा इसके द्वारा हमें मनोरंजन के अवसर भी प्राप्त होते हैं। अनेक समुदाय व संस्कृतियाँ वातावरण तथा जैव-विविधता पूर्ण पर्यावरण द्वारा प्रदान किए गए संसाधनों के साथ सह-विकसित हुए हैं। इसलिए जैव-विविधता महत्त्वपूर्ण सामाजिक भूमिका भी निभाती है।

जैव-विविधता और पारिस्थितिक संतुलन:-

किसी पारितंत्र में उच्च स्तरीय विविधता उसे स्थायित्व प्रदान करती है। उदाहरणार्थ, अत्यंत जटिल पारिस्थितिक तंत्र जैसे उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में वन यदि न काटे जाएं, तो लम्बे समय तक अपरिवर्तित बने रह सकते हैं। दूसरी ओर, साधारण पारिस्थितिक तंत्र जैसे टुण्ड्रा अत्यंत भंगुर है। ये क्रियाएं सामूहिक रूप से ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित करती हैं, जो जीवन के अस्तित्व के लिए स्वास्थ्यवर्धक हैं। एक से अधिक विविधता वाले पारिस्थितिक तंत्र में प्रजातियों की बहुत अधिक संख्या होने के कारण, अन्योन्य क्रियाएँ भी अधिक होती हैं, जिनके कारण बड़ा आहार जाल बनता है। इस परिस्थिति में जाति विलोपन से पारिस्थितिक तंत्र के संतुलन पर मामूली प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत यदि किसी पारिस्थितिक तंत्र के आहार जाल में जातियों की संख्या कम हो, तो एक भी जाति के लोप होने से पारिस्थितिक तंत्र की अखण्डता पर गहरा प्रतिघात होता है। पिछले करीब 50 वर्षों से मानव जनसंख्या में असाधारण वृद्धि तथा औद्योगिक एवं कृषि विकास के कारण तमाम तरह की पर्यावरणीय विकृतियाँ होने लगी हैं और पर्यावरण भौतिक एवं रासायनिक रूप से प्रदूषित होने लगा है। इसके फलस्वरूप तमाम तरह के प्राणियों, वनस्पतियों तथा सूक्ष्मजीवों के नष्ट होने की संभावना बढ़ती जा रही है।

जीवों की प्रजातियों एवं जातियों के लगातार नष्ट होते रहने की प्रक्रिया को जैव विविधता क्षरण या जैव आनुवंशिक क्षरण के नाम से जाना जाता है। मृदा, जल और वायु के समान ही जैव विविधता एक मुख्य प्राकृतिक संसाधन है, जिसका क्षरण पर्यावरण के लिए बहुत ही खतरनाक साबित हो सकता है। विशेषकर उन्नत कृषि तथा अनियन्त्रित जनसंख्या वृद्धि के कारण जैव-विविधता काफी तीव्र गति से नष्ट हो रही है।

हॉटस्पॉट:- जैव-विविधता उष्णस्थल (Bio-diversity Hotspots):-

जैव-विविधता उष्णस्थल या हॉटस्पॉट की अवधारणा प्रसिद्ध पर्यावरणविद् नॉर्मन मायर्स द्वारा सन् 1988 में प्रतिपादित की गयी थी। जैव-विविधता हॉटस्पॉट का आशय ऐसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र से है, जहां भारी जीव वैज्ञानिक विविधता और एक छोटे से क्षेत्र में ही उच्च स्तरीय स्थानीयता पाई जाती है तथा जहाँ प्रजातियों के विलोपन एवं आवासीय विध्वंस का तत्काल खतरा पाया जाता है। सामान्य शब्दों में कहें तो जैव-विविधता हॉटस्पॉट से आशय उन क्षेत्रों से हैं, जो अन्य क्षेत्रों की तुलना की दृष्टि से समृद्ध होते हैं तथा वर्तमान में जहाँ की जैव विविधता संकटग्रस्त है।

जैव-विविधता के हॉटस्पॉट पृथ्वी की भूमि की सतह केवल 2.3: का प्रतिनिधित्व करते हैं, लेकिन ये विश्व के पौधों की आधी से अधिक प्रजातियों को स्थानिक प्रजाति के रूप में अवलंबन प्रदान करते हैं। स्थानिक प्रजातियों से आशय उन प्रजातियों से हैं, जो कहीं और नहीं पाए जाते। कंजर्वेशन इंटरनेशनल (CI) ने इन जैव-विविधता की दृष्टि से संपन्न क्षेत्रों, जो विनाश के भारी खतरे का सामना कर रहे हैं, की पहचान करके उन्हें जैव-विविधता उष्णस्थलों के रूप में प्रस्तुत किया। सामान्यत: ये उष्णस्थल तीन आधारों पर पहचाने जाते हैं-

(i) वहां मौजूद प्रजातियों की संख्या

(ii) सिर्फ वहीं एकान्तिक रूप से पाई जाने वाली प्रजातियों की संख्या

(iii) उन प्रजातियों के विलोपन का खतरा हो अथवा अपने मूल पर्यावास का कम से कम 70% नष्ट हो गया हो।

हालांकि, ये उष्णस्थल महाविविधता केन्द्रों (Megadiversity Centers) के समान राजनैतिक इकाई नहीं हैं, अपितु ये पारिस्थितिक तंत्र पर आधारित हैं। इनकी पहचान से अंतर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा उनके संरक्षण हेतु प्रयास करने में काफी सहायता मिली है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

वैश्विक स्तर पर 35 जैव-विविधता उष्णस्थलों की पहचान की गई है-

कंजर्वेशन इंटरनेशनल (CI) द्वारा पहचाने गए जैव-विविधता उष्णस्थल

एशिया प्रशांत

1. न्यू कैलेडोनिया
2. न्यूजीलैण्ड
3. पोलिनेशिया-माइक्रोनेशिया
4. दक्षिण-पश्चिम ऑस्ट्रेलिया
5. पूर्वी ऑस्ट्रेलिया के वन (न्यू)
6. जापान
7. दक्षिण-पश्चिम चीन के पर्वत
8. पूर्वी मेलानेशियन द्वीप समूह
9. हिमालय
10. पश्चिमी घाट और श्रीलंका
11. इण्डो-बर्मा

उत्तर तथा मध्य अमेरिका

12. कैलिफोर्निया फ्लोरिस्टिक प्रोविंस
13. कैरेबियन द्वीप समूह
14. मैड्रियन पाइन-ओक वुडलैण्ड
15. मीजो-अमेरिका

दक्षिण अमेरिका

16. ट्रॉपिकल एंडीज
17. टुंब्स-चाको-मैगडलेना
18. सेरेडो
19. चिली शीतकालीन वर्षा वन
20. अटलांटिक वन

अफ्रीका

21. पूर्वी अफ्रीका के तटीय वन
22. केप फ्लोरिस्टिक रीजन
23. पश्चिमी अफ्रीका के गिनी वन
24. पूर्वी एफ्रोमोंटेन
25. हॉर्न ऑफ अफ्रीका (सोमालिया इथियोपिया, इरीट्रिमा जिबूती)
26. सकुलेन्ट कैरु
27. मेडागास्कर
28. मपुटालैंड-पोडोलैंड-अल्बानी
29. वालेशिया
30. हिमालय
31. मध्य एशिया के पर्वत

यूरोप और मध्य एशिया

28. काकेशस
29. इरानो-अनातोलियन
30. मेडिटेरेरियन बेसिन

● कंजर्वेशन इंटरनेशनल द्वारा प्रदत्त विश्व के 10 अत्यधिक संकटग्रस्त 'फॉरेस्टेड हॉटस्पॉट्स' की रैंकिंग शेष बचे मूल पर्यावास के प्रतिशत के अनुसार सूचीबद्ध है:- (2011-12)

उष्णस्थल (Hotspot)	शेष पर्यावास (Remaining Habitat)
1. इण्डो-बर्मा (दक्षिणी एशिया)	5%
2. न्यू कैलेडोनिया (प्रशांत द्वीप समूह)	5%
3. सुंडालैण्ड (इंडोनेशिया/मलेशिया)	7%
4. फिलीपींस	7%
5. अटलांटिक वन (दक्षिण अमेरिका)	8%
6. दक्षिण पश्चिम चीन पर्वत	8%
7. कैलिफोर्निया फ्लोरिस्टिक प्रोविंस (U.S मैक्सिको)	10%
8. पूर्वी अफ्रीका के तटीय वन	10%
9. मेडागास्कर और हिन्दमहासागर द्वीप समूह	10%
10. पूर्वी एक्रोमोंटेन (अफ्रीका)	11%

जैव-विविधता क्षय के प्रमुख कारण:-

जैव-विविधता क्षय के विभिन्न कारण हैं जिसमें आवास का विनाश, विदेशी मूल के पौधों का आक्रमण, पर्यावरण, प्रदूषण, आवास का विखण्डन, अतिउपयोग, वन्य-जीवों का शिकार, वनविनाश, अतिचराई, बीमारी, चिड़ियाघर तथा शोध हेतु प्रजातियों का उपयोग, नाशीजीवों का नियंत्रण, प्रतियोगी अथवा परभक्षी प्रजातियों का प्रवेश आदि प्रमुख हैं।

● आवास का विनाश

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

- विदेशी मूल के पौधों का आक्रमण
- पर्यावरण प्रदूषण
- वन्य-जीवों का शिकार
- वन विनाश
- अति-चराई
- बीमारी
- चिड़ियाघर तथा शोध हेतु प्रजातियों का उपयोग
- नाशीजीवों तथा परभक्षियों का नियंत्रण
- प्रतियोगी अथवा परभक्षी प्रजातियों का प्रवेश

जैवविविधता का संरक्षणः-

चूँकि जैवविविधता मानव सभ्यता के विकास की आधार है इसलिए इसका संरक्षण अति आवश्यक है। जैवविविधता हमारे भोजन, कपड़ा, औषधीय, ईंधन आदि की आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। जैवविविधता पारिस्थितिक संतुलन को बनाये रखने में सहायक होती है। इसके अतिरिक्त यह प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़, सूखा आदि में भी राहत प्रदान करती है। वास्तव में जैवविविधता प्रकृति की स्वभाविक संपत्ति है और इसका क्षय एक प्रकार से प्रकृति का क्षय है। अतः प्रकृति को नष्ट होने से बचाने के लिए जैव-विविधता को संरक्षण प्रदान करना अनिवार्य है।

जैवविविधता संरक्षण में प्रजातियों का महत्व

- स्थानिक प्रजाति
- उच्च-प्रभाव प्रजाति
- आधारी प्रजाति
- विदेशी मूल आक्रामक प्रजाति
- संरक्षण-केन्द्रित प्रजाति

GS WORLD Committed to Excellence
Downloaded From www.studymasterofficial.com

5. भारत की जैव-विविधता

भौगोलिक दृष्टि से भारत की अवस्थिति एशिया महाद्वीप में विशिष्ट है। यहाँ विश्व की लगभग समस्त प्रकार की जलवायु, वनस्पति आदि विद्यमान है। भारत में जीव-जन्तु एवं प्राणियों की प्राचीन एवं अर्वाचीन प्रजातियाँ विद्यमान हैं, उतना किसी अन्य देश में नहीं। भारत में प्राकृतिक वासों की विविधता है, जिससे जीव-जंतुओं एवं प्राणियों में विविधता उत्पन्न हुई है। वर्तमान समय में हमारे देश में मुख्य रूप से भारतीय मलायन, इथोपियन, यूरेशियन आदि वन्य जीवों का मिश्रण मिलता है। जैव-विविधता के संदर्भ में भारत विश्व के 10 एवं शीर्ष 4 देशों में आता है। विश्व के केवल 2.4% भू-भाग होने के बावजूद भारत में वैश्विक जैव-विविधता का लगभग 7% भाग पाया जाता है और इसके साथ ही यहाँ मानव जनसंख्या का लगभग 17% निवास करता है।

भारतीय जैव-विविधता को चार वर्गों में वगीकृत किया जा सकता है:-

- **भारतीय स्थानक जैव-विविधता:-** भारत की स्थलाकृति विन्यास एवं जलवायविक विषमता के कारण भिन्न-भिन्न प्रकार के प्राकृतिक वासों का निर्माण हुआ है। प्रायद्वीपीय पठारी क्षेत्रों में जहाँ सघन वानस्पतिक आवरण हैं, वहां भारतीय जैव-विविधता विद्यमान है।
- **मलायन जैव-विविधता:-** पूर्वी हिमालय की घाटियों में जहाँ सघन वनों का आवरण है तथा समुद्र तटीय क्षेत्रों में मलायन जैव-विविधता स्पष्ट है।
- **इथोपियन जैव-विविधता:-** राजस्थान तथा उसके आस-पास के क्षेत्रों में जहाँ शुष्क वातावरण है, वहाँ इथोपियन जैव-विविधता पायी जाती है।
- **यूरोपियन जैव-विविधता:-** उच्च हिमालयी क्षेत्रों में जो वर्ष के अधिकांश समय तक हिमाच्छादित रहते हैं, वहाँ यूरोपियन जैव-विविधता है।

जैव विविधता को प्रदर्शित करने वाले विभिन्न कारक:-

- **क्षेत्र:-** भारत का जैव-भौगोलिक क्षेत्र बहुत विस्तृत है अत: इसका पारिस्थितिक तंत्र में विशेष योगदान है। विभिन्न वनस्पतियों एवं पशु प्रजातियों के आधार पर भारतीय क्षेत्र को दो उपवर्गों में विभाजित किया गया है:-
- **हिमालय क्षेत्र:-** इसके अंतर्गत विभिन्न प्रकार की वनस्पति, पेड़ पौधे, पशु एवं जीवों की प्रजाति आदि पाये जाते हैं।
- **उपमहाद्वीपीय क्षेत्र:-** इसके अंतर्गत भारत पूर्वी क्षेत्र के साथ-साथ तटीय क्षेत्र एवं प्रमुख तटीय राज्य आते हैं जिसे मलायम जैव विविधता से जाना जाता है।

इसका आशय मौसमी घटकों के आधार पर सजीव पेड़ पौधे एवं जीव जन्तुओं के समूह से होता है। जो एक विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र में पाये जाते हैं। भारत जीवोम के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र निम्नवत है:-

- उष्णकटिबंधीय नम वन।
- गर्म मरूस्थल।
- अल्पाइन तृणभूमि।
- उष्णशुष्क एवं पतझड़ वन।
- सदाबहार वन।

इसके अंतर्गत वनस्पति एवं जन्तुओं का भौगोलिक विस्तार को प्रदर्शित किया गया है। जिसके अंतर्गत निम्नलिखित जैव भैगोलिक क्षेत्र आते हैं:-

ट्रांस हिमालय

विभिन्न मौसमी दशाएं उपलब्ध होने के कारण यह क्षेत्र अत्यंत शुष्क एवं ठंडा है इस क्षेत्र का अधिकांश भाग हिम एवं पत्थर से ढका हुआ है। वनस्पतियों में यहां निम्नता होने के कारण यहाँ केवल अल्पाइन ही पाये जाते हैं यह भारत का 5.7% भू-भाग को कवर करता है, जिसका विस्तार तिब्बत के पठार से लेकर लद्दाख तक फैला हुआ है। जंगली जंतुओं में भेड़, बकरी, आइबेक्स, हिम लेपर्ड, सफेद बिल्ली, मैमथ एवं काली गर्दन वाला सारस आदि पाये जाते हैं।

हिमालय

यह भौगोलिक क्षेत्र उत्तर पूर्वी भारत से लेकर उत्तर पश्चिम भारत तक विस्तृत है। विषुवत रेखा के निकट होने के कारण पूर्वी हिमालय में वर्षण अधिक होता है। अत: इस क्षेत्र की जैव विविधता, उत्तर पश्चिमी हिमालय क्षेत्र की अपेक्षा अधिक है। ऊँचाई के वृद्धि के साथ-साथ इस क्षेत्र में उष्णकटिबंधीय वनों के साथ टुण्ड्रा वन भी पाये जाते हैं। अत: इस क्षेत्र में हिम तेन्दुआ, भालू आदि जानवरों का वास पाया जाता है। जैव विविधता की दृष्टि से यह क्षेत्र अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

भारतीय रेगिस्तान

यह अर्द्ध शुष्क क्षेत्र भारत के पश्चिमी भाग में पाया जाता है, जिसके अंतर्गत अरावली क्षेणी के साथ-साथ लवण युक्त झीलें, मरूस्थल आदि आते हैं। भारत के इस भाग 6.9% देश के कुल क्षेत्रफल में योगदान है। अतः इस क्षेत्र में जीवों की प्रमुख प्रजातियों में ब्लैकबक (Black Buck), नीलगाय, जंगली गधे, चिंकारा, मरूस्थली लोमड़ी, ग्रेट इंडियन बस्टर्ड, फ्लैमिंगो आदि मिलते हैं। जो भारतीय जैव विविधता की दृष्टि से बेहद महत्त्वपूर्ण है।

गंगा का विशाल मैदान

यह क्षेत्र भारत के उत्तर भाग में उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल तक विस्तृत है, जो भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्र में 11% का योगदान देता है। गंगा का मैदान, भारत के सबसे अधिक उर्वरक क्षेत्रों में से एक है। मृदा की उर्वरता के साथ इसे कई वर्गों में विभाजित किया गया है। तराई भाग, भांगर, खादर, निचला गंगा का क्षेत्र आदि प्रमुख उपजाऊ क्षेत्र है। जो कि देश के कुल कृषि उत्पादक ने विशेष योगदान देते है। दक्षिण पूर्वी क्षेत्र में मैंग्रोव वनों की उपलब्ध ता में यहाँ जीव जन्तुओं में अधिकतर वृद्धि देखी जाती है। यहाँ के जन्तुओं में गैंडा, ब्लैक बक, हाथी, कछुए, मछलियां, घड़ियाल तथा विभिन्न प्रकार के कीट पतंगे आदि मिलते है।

अर्द्ध शुष्क क्षेत्र

इसके तहत दक्कन का पठार तथा पश्चिमी रेगिस्तान के मध्य का क्षेत्र आता है। जो देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 15.6% भाग है। इस क्षेत्र में वनस्पतियों में यूफोर्वीया, घास आदि मिलते हैं। उष्णकटिबंधीय कटीले वन यहां की प्रमुख वनस्पति है उष्णक. टिबंधीय जलवायु होने के कारण यहाँ जीव जंतुओं में भिन्नता पायी जाती है। इस क्षेत्र में एशियाटिक शेर, चीता आदि प्रमुख हैं।

दक्कन प्रायद्वीपीय क्षेत्र

यह दक्षिण भारत का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है, इसका विस्तार पूर्वी घाट से लेकर पश्चिमी घाट तथा सतपुड़ा पहाड़ियों के मध्य का क्षेत्र है। यह भारत का सर्वाधिक विस्तृत जैव-भौगोलिक क्षेत्र है जो कि संपूर्ण भू-दृश्य के 43% भाग पर है। इस क्षेत्र में प्रवाहित होने वाली नदियाँ नर्मदा, गोदावरी, महानदी, कृष्णा, ताप्ती आदि प्रमुख है, यहाँ मुख्यतः काली, लाल, मृदा के साथ विभिन्न फसलों की खेती की जाती है। वनस्पति में उष्णकटिबंधीय वन, खट्टे फल आदि प्रमुख उगते है।, जीवों की दृष्टि से उस क्षेत्र का अत्यंत महत्त्व है यहां बारहसिंगा, टाइगर, भालू, जंगली भैसा, जंगली सुअर, हाथी आदि जन्तु पाये जाते हैं।

तटीय एवं द्वीपीय क्षेत्र

भारत में तटीय क्षेत्र का विस्तार दक्षिण पूर्व से लेकर, दक्षिण एवं उत्तर पश्चिम तक फैला है। क्षेत्रफल की दृष्टि से यह नगण्य है, परन्तु जैव विविधता की दृष्टि से इसका अधिक महत्त्व है, इन क्षेत्रों में मैंगोव वनों की अधिकता होने के साथ विभिन्न प्रकार के जीव जंतु-डॉल्फिन, घड़ियाल, डुगांग, एवीफौना आदि पाये जाते हैं, इसके पूर्वी तट पर स्थित सुन्दर वन में 'रायल बंगाल टाइगर' के लिए प्रसिद्ध है।

भारत में जैव-विविधता की दृष्टि से द्वीपीय क्षेत्र अत्यंत महत्त्वपूर्ण है इस क्षेत्र का विस्तार अंडमान द्वीप के उत्तर में स्थित निकोबार से लेकर लक्षद्वीप आदि तक है, जो कुल भू-दृश्य का 0.03% भाग है इन द्वीपों में विभिन्न प्रकार के प्रवाल भित्ति पायी जाती है। यह क्षेत्र औषधीय वनस्पति की दृष्टि से भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। जीवों में यहाँ डॉल्फिन, प्रवाल भित्ति विभिन्न प्रकार की मछलियाँ आदि प्रमुख है। मत्स्य क्षेत्र में इसका विशेष योगदान है।

भारत के विभिन्न जैव-विविधता वाले क्षेत्र

जैव-विविधता संपन्नता की दृष्टि से भारत विश्व के अग्रणी देशों में आता है। वनस्पतियों तथा जीव जन्तुओं की बहुत सी ऐसी प्रजातियाँ है जो सिर्फ भारतीय जैव-विविधता की विशेषता को प्रदर्शित करती हैं। विभिन्न पर्यावरणीय दशाओं की उपस्थिति ने भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विविध प्रकार के जीव जन्तुओं तथा वनस्पतियों का विकास किया है। भारत में चिन्हित किए गए हॉट-स्पॉट में कम-से-कम 1.5 लाख स्थानिक प्रजातियों के पौधे हैं, जो विश्व के कुल संवहनीय पौधों का लगभग 50% है। सम्मिलित रूप में तो स्तनधारियों सरीसृपों, पक्षियों और उभयचरों की 11980 प्रजातियाँ, हॉट-स्पॉट प्रजातियाँ (सभी स्थालीय कशेरुकियों का 42 प्रतिशत) है। जबकि कुछ कशेरुकी प्रजातियों में विश्व की लगभग 77% निवास करती हैं। इसके अतिरिक्त हॉटस्पॉट के अनुमानित 3400 से अधिक मीठे पानी की मत्स्य प्रजातियाँ स्थानिक हैं, जिनकी संख्या वास्तव में और अधिक हो सकती है। जैव-विविधता की दृष्टि से भारत में निम्नलिखित क्षेत्रों में चिन्हित किया गया है।

- भारत के हॉट-स्पॉट क्षेत्र
- समुद्री जैव-विविधता क्षेत्र
- भारत के जैव भौगोलिक क्षेत्र

भारत में जैव-विविधता हॉटस्पॉट

जैवविविधता से संपन्न भारत में वैश्विक प्रजातियों का लगभग 7 से 8% प्रजातियाँ पायी जाती हैं। पौधों की 45000 और जन्तुओं की 91000 प्रजातियों की उपस्थिति के कारण भारत जैव विविधता से संपन्न देशों में विशिष्ट स्थान रखता है। अब तक विश्व में कुल 36 हॉट-स्पॉट क्षेत्रों की पहचान की गयी है। इन क्षेत्रों में संपूर्ण विश्व की 60% प्रजातियाँ पाई जाती है। भारत में कंजर्वेशन इंटरनेशनल द्वारा जैव-विविधता हॉट-स्पॉट के चार केन्द्रों की पहचान की गयी है, जो इस प्रकार हैं:-

Downloaded From www.studymasterofficial.com

हिमालयी प्रदेश

हिमालयी जैव-विविधता हॉटस्पॉट के अंतर्गत भारत के उत्तराखण्ड, सिक्किम, अरूणाचल प्रदेश एवं उपहिमालयी दार्जिलिंग, नेपाल, भूटान तथा चीन के यूनान प्रांत के समृद्ध जीवीय समुदायों को सम्मिलित किया जाता है। हिमालयी प्रदेश में 10,000 से अधिक पौधों की प्रजातियाँ पायी जाती हैं। इनमें से 32 प्रतिशत पादप प्रजातियाँ स्थानिक हैं। अकेले सिक्किम (भौगोलिक क्षेत्रफल-7298 वर्ग किलोमीटर) में 4200 पादप प्रजातियाँ पायी जाती हैं, जिनमें से 36 प्रतिशत प्रजातियाँ स्थानिक हैं। उल्लेखनीय है कि कई हिमालयी प्रदेशों में पादप प्रजातियों की बड़ी संख्या सही में सामान्य रूप में पायी जाती है क्योंकि भारत, नेपाल तथा भूटान में इन प्रजातियों का अतिव्यापन हुआ है।

इण्डो म्यांमार जैव हॉट-स्पॉट

यह गंगा-ब्रह्मपुत्र निम्न भूमि के पूर्व में स्थित है जिसे 2005 में पृथक हॉट-स्पॉट का दर्जा प्रदान किया गया। इण्डो-म्यांमार हॉट-स्पॉट लगभग 23,73000 वर्ग किलो मीटर क्षेत्र पर फैला हुआ है जो सिक्किम, भूटान, पश्चिमी म्यांमार तथा चीन के यूनान प्रांत में विस्तृत है। इसका प्रमुख लक्षण यह है इसमें ऊँचाई उच्चावच, जलवायु मृदा व वनस्पति संबंधी बहुत अधिक विविधता पायी जाती है। जिससे यहां पर जैव विविधताएं पाई जाती है। यहां पर पौधों की 13000 प्रजातियाँ हैं जिनमें लगभग 52% स्थानीय हैं। यहां पक्षियों की 1260 प्रजातियाँ हैं, जिनमें से 60 से अधिक स्थानीय है। इसी प्रकार यहां स्तनधारियों जीवों की 70 प्रजातियाँ है, जिनमें से 7 प्रजातियाँ स्थानीय है। इण्डो म्यांमार हॉट-स्पॉट जैव विकास की दृष्टि से काफी सक्रिय है। इस हॉट-स्पॉट में लगभग 160 सकंटाप्रन्न प्रजातियाँ हैं जिनमें एक सींग वाला गैंडा, उड़न गिलहरी, एशियाई हाथी, स्नो लैपर्ड आदि शामिल हैं। यहां पर लगभग 6000 शिरा संबंधी (Vascular) पौधों की प्रजातियाँ हैं, जिनमें से लगभग 35 स्थानीय हैं। लगभग 150 स्तनधारी जीव हैं, जिनमें लगभग 3000 स्थानीय (Endemic) है। यहाँ पर 450 से अधिक पक्षियों की प्रजातियाँ हैं। इस प्रकार पश्चिमी घाट जैव विविधता की दृष्टि से विश्व के सबसे समृद्ध स्थलों में से एक है।

पश्चिमी घाट जैव-विविधता हॉट-स्पॉट प्रदेश

जैव-विविधता हॉटस्पॉट की दृष्टि से पश्चिमी घाट काफी महत्त्वपूर्ण है। पश्चिमी घाट जैव-विविधता हॉट-स्पॉट प्रदेश में पायी जाने वाली समस्त प्रजातियों का 52 प्रतिशत भाग स्थानिक प्रजातियों का है। पश्चिमी घाट पारिस्थितिक तंत्र का विस्तार महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु तथा केरल के पश्चिमी भागों में पाया जाता है। अगस्त्यमलाई पहाड़ी तथा शांत घाटी इस प्रदेश के अति महत्त्वपूर्ण समृद्ध जैव-विविधता हॉट-स्पॉट क्षेत्र हैं। इस प्रदेश में सदाबहार तथा पर्णपाती वनों के पौधों की स्थानिक प्रजातियाँ पायी जाती हैं। परन्तु, निर्वनीकरण एवं कई विकासशील परियोजनाओं के क्रियान्वयन के कारण इस प्रदेश के आवासों एवं जैव-विविधता को तेजी से नष्ट होने का खतरा उत्पन्न हो गया है। परिणामस्वरूप पौधों एवं जन्तुओं की दुर्लभ प्रजातियाँ संकटापन्न हो गयी हैं। यहां पर लगभग 6000 शिरा संबंधी (Vascular) पौधों की प्रजातियाँ हैं, जिनमें से लगभग 35 स्थानीय हैं। लगभग 150 स्तनधारी जीव हैं, जिनमें लगभग 3000 स्थानीय (Endemic) है। यहाँ पर 450 से अधिक पक्षियों की प्रजातियाँ हैं। इस प्रकार पश्चिमी घाट जैव विविधता की दृष्टि से विश्व के सबसे समृद्ध स्थलों में से एक है।

सुंडालैण्ड क्षेत्र

इसका विस्तार भारत के ग्रेट निकोबार द्वीप से लेकर 'ट्रिनकेट सहित नानकउरी द्वीपसमूह' इण्डोनेशिया, मलेशिया, सिंगापुर, ब्रुनेई एवं फिलीपींस तक है। समुद्री एवं स्थलीय जैव-विविधता की दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। मैंग्रोव कोरल रीफ, सीग्रास वेड, व्हेल, ड्यूगॉन्ग, कैछुआ, मगरमच्छ एवं प्रान आदि यहाँ की प्रमुख प्रजातियाँ हैं। इसके अतिरिक्त समुद्र तटीय क्षेत्र भी जैव-विविधता की दृष्टि से काफी संपन्न हैं। भारत का समुद्रतटीय क्षेत्र 7,516.6 तक विस्तृत है। मैंग्रोव, प्रवाल भित्ति एवं एश्चुअरी समुद्री जैव-विविधता क्षेत्रों के अंतर्गत शामिल किए जाते हैं। जहाँ पर्यावरणीय जैव विकास की अनुकूल स्थिति के कारण जीवों की प्रजातियों की प्रचुरता पायी जाती है। प्रवाल समुद्री जैव-विविधता का एक विशिष्ट उदा. हरण है। समुद्री घास, मैंग्रोव, मोलस्क (घोंघा आदि), क्रस्टेशियन, पॉलीकीट्स आदि समुद्री जैव-विविधता के अन्य सांगोयांग है। बाघों का संरक्षण तथा प्रत्येक चार वर्ष के पश्चात् प्रौद्योगिकी की सहायता से देशभर में बाघों का सर्वेक्षण करती है। प्रोटेक्ट टाइगर बाघों की संख्या में वृद्धि तथा संरक्षण की दृष्टि से काफी हद तक सफल रहा है। हालांकि, 2014 में जहाँ इनकी संख्या 2226 थी वहीं अब (2018) यह बढ़कर 3000 के ऊपर पहुँच चुकी है। W.W.F ने 2022 तक इनकी कुल संख्या 6400 होने का अनुमान लगाया है।

समुद्री जैव-विविधता

भारत में तटीय एवं द्वीपीय सामुद्रिक जैव-विविधता का विस्तृत भण्डार मौजूद है। पश्चिमी तटीय क्षेत्र में गुजरात के कच्छ से लेकर केरल तट तक विविध रूप में जैव विविधता देखी जा सकती है। इसी प्रकार पूर्वी घाट विशेषकर पश्चिम बंगाल व ओड़िसा का तट मैंग्रोव वनस्पतियों से समृद्ध है। अंडमान निकोबार द्वीप समूह तथा लक्षद्वीप समूह न केवल विभिन्न प्रकार के वनस्पतियों से आच्छादित है अपितु केरल, मूंगा, प्रवाल भित्तियों जैसे बहुमूल्य समुद्री घास की भी कई प्रजातियाँ पाई जाती हैं।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
Committed to Excellence

भारत की जैव-विविधता की प्रचुरता के कारण

भारत एक उपमहाद्वीपीय आकार वाला देश है। इसका कुल क्षेत्रफल लगभग 32.8 लाख वर्ग कि.लो. है। भारतीय भू-खण्ड प्राच्च जैव-भौगोलिक प्रदेश का महत्त्वपूर्ण भाग है, जिसमें बलूचिस्तान से लेकर म्यांमार तक दक्षिण एशिया, दक्षिण पूर्ण एशिया तथा हिन्द महासागर के कुछ द्वीप सम्मिलित हैं। भारत की जैव-विविधता संपन्नता में उच्चावच संबंधी विविधता का महत्त्वपूर्ण योगदान है। भारत में लगभग 100 मिलियन हेक्टेयर पर्वतीय तथा 30 मिलियन हेक्टेयर मरूस्थलीय तथा 30 मिलियन हेक्टेयर अर्द्ध-मरुस्थलीय क्षेत्र है।

भारत में विविधता प्रकार को जलवायु, तापमान तथा वर्षा प्रारूप में भी विभिन्नता देखी जाती है। जहाँ एक तरफ राजस्थान के बाड़मेर में दिन का तापमान 45° से 50° सेल्शियस तक पहुँच जाता है वहीं दिसम्बर-जनवरी के महीने में सियाचिन का तापमान 40° से 42° से तक पहुंच जाता है। इस प्रकार वार्षिक वर्षा उत्तर-पूर्वी भाग तथा पश्चिमी तटीय प्रदेश में 250 से.मी. से अधिक होती है और जैसलमेर तथा लेह में 10 से.मी. से भी कम होती है। इस विभेदीकृत मौसमी या जलवायविक उपस्थिति ने विभिन्न स्थानिक विशिष्टताओं से युक्त वनस्पतियों, वृक्षों, व जीव-जन्तुओं के विकास हेतु अनुकूल वातावरण निर्मित किया है।

जैव-विविधता का ह्रास

वर्तमान में संपूर्ण जैव-विविधता गंभीर संकट के दौर से गुजर रही है। स्थानिक पक्षियों की 2000 से अधिक प्रजातियां विलुप्त हो चुकी हैं। IUCN के रेड लिस्ट (2004) में पिछले 500 वर्षों में कुल 784 प्रजातियों (338 कशेरूकी, 359 अकशेरूकी और 87 पौधों सहित) के विलुप्त होने का उल्लेख किया गया है। हाल ही में विलुप्त होने वाली प्रजातियों के कुछ उदाहरणों में डोडो (मॉरिशस), कागा (अफ्रीका), थाइलासीन (ऑस्ट्रेलिया), स्टेलर सी काउ (रूस) और बाघ की तीन उपप्रजातियाँ (बाली,जावा केस्पियन) शामिल हैं। स्मरणीय है कि विगत कुछ वर्षों में ही 28 प्रजातियाँ विलुप्त हो गयीं तथा बहुत सी विलुप्ति की कगार पर खड़ी हैं।

जैव-विविधता ह्रास के कारण

जीवों का विलोपन एक प्राकृतिक प्रक्रिया है। वास्तव में पृथ्वी पर रहने वाली अधिकांश प्रजातियाँ अब विलुप्त हो चुकी हैं। उनका विलोपन 'प्राकृतिक' रूप से किसी कारणवश हो चुका है। संभवतः वे अपने जैविक या भौतिक पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों के साथ सामंजस्य बैठाने में सफल नहीं हो सके या वे किसी आपदा के शिकार हो गए। प्रजातियों के विलोपन की दर मानव वैज्ञानिक काल में समान नहीं रही। भू-वैज्ञानिक इतिहास के अधिकांश काल में विलोपन की घटनाएँ मंद ही रहीं परंतु उनके बीच-बीच में कुछ ऐसे काल आए, जिनमें विलोपन की गतिविधियाँ एकदम से बढ़ गई।

ऐसी 6 आपदाकारी घटनाओं के प्रमाण मिलते हैं, जिनमें व्यापक सामूहिक विलोपन हुआ। सबसे भयंकर सामूहिक विलोपन लगभग 250 मिलियन वर्ष पूर्व घटित हुआ, जब लगभग 96 प्रतिशत समुद्री प्रजातियाँ विलुप्त हो गई।

दूसरी घटना 65 मिलियन वर्ष पूर्व घटित हुई, जिसमें अनेक कशेरुकी प्रजातियाँ विलुप्त हो गई। इसी में सरीसृप वर्ग के डायनासौर और टेरोसॉरिया भी शामिल थे।

आधुनिक काल में मानव इस विलोपन की घटना को प्रेरित करने वाला मुख्य कारक है। विगत 200 वर्षों के दौरान विश्व की लगभग 100 स्तनपायी प्रजातियाँ, 160 पक्षी प्रजातियाँ और कई अन्य प्रजातियाँ मानवीय कारकों से विलुप्त हुईं।

पाषाणयुगीन मानव ने बड़े प्राणियों एवं वनस्पतियों को अनेक स्थानों पर अंधाधुन्ध शिकार द्वारा काफी क्षति पहुँचायी। विगत दस से पचास हजार वर्षों के बीच मेडागास्कर, न्यूजीलैंड, ऑस्ट्रेलिया, तस्मानिया, हवाई द्वीप समूह, उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका आदि में, मानव बसाव तथा उसके क्रियाकलापों के परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में प्रजातियों का विलोपन हुआ। यह एक निर्विवाद सत्य है कि मानव ने अपनी संख्या और असंयत-असंपोषणीय गतिविधियों के द्वारा पृथ्वी पर जैव विविधता की गुणवत्ता एवं परिणाम का ह्रास हुआ है।

जैव-विविधता क्षरण के विभिन्न कारण हैं, जिनमें आवास विनाश, आवास विखण्डन, पर्यावरण प्रदूषण, विदेशी मूल के पौधों का आक्रमण, अतिशोषण, वन्यजीवों का शिकार, वन विनाश आदि हैं। इनका विस्तृत विवरण इस प्रकार है-

- आवास विनाश तथा आवास विखण्डन
- पर्यावरण प्रदूषण
- बाह्य जातियों की प्रविष्टि
- प्राकृतिक आपदाएँ
- जलवायु परिवर्तन
- जनसंख्या वृद्धि तथा शहरीकरण
- अवैध शिकार
- प्राकृतिक कारण

संकटग्रस्त अथवा संकटापन्न प्रजातियाँ

संकटग्रस्त प्रजातियों से तात्पर्य यह है, कि ऐसी प्रजातियाँ जो विलुप्त होने के भारी खतरे का सामना कर रही हैं। अर्थात् यदि उनके संरक्षण के लिए तत्काल कारगर कदम नहीं उठाये गए, तो ये शीघ्र ही विलुप्त हो सकती हैं। इस संदर्भ में 'इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजर्वेशन ऑफ नेचर' (IUCN) द्वारा किए गए वर्गीकरण को देखा जा सकता है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com

IUCN की रेड डाटा बुक (रेड लिस्ट) में प्रजातियों को उनकी स्थिति के अनुसार कुल नौ श्रेणियों में रखा गया है। स्मरणीय है कि यह आकलन प्रजातियों की संख्या में गिरावट, भौगोलिक क्षेत्र में उनकी स्थिति के आधार पर किया जाता है।

IUCN द्वारा जैव-विविधता के अंतर्गत संकटग्रस्त प्रजातियों का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में किया गया है:-

विलुप्त

ऐसी प्रजातियाँ, जिनका एक भी जीवित सदस्य शेष नहीं है। यह विलोपन किसी प्राकृतिक निवास अथवा संरक्षित क्षेत्र में हो सकता है।

वन्य विलुप्त

वह प्रजाति, जो वनों से पूर्णतः विलुप्त हो चुकी है और इसके बचे हुए सदस्य केवल चिड़ियाघरों या अपने मूल स्थान से अलग किसी कृत्रिम निवास स्थान पर ही जीवित हैं।

गंभीर रूप से संकटग्रस्त

इसका आशय उस अवस्था से है, जिसमें पिछले 10 वर्षों में 90% वन्य जीवों की संख्या कम हो जाती है, वयस्कों की संख्या 50 से कम रह जाती है तथा आने वाले 10 वर्षों अथवा 3 पीढ़ियों में प्रजाति के लुप्त होने की संभावना अधिक प्रबल होती है।

संकटाग्रस्त

इसके अंतर्गत प्रजातियों के विलुप्त होने का खतरा बना हुआ होता है। इस स्थिति में 70 प्रतिशत से कम जनसंख्या और 250 से कम वयस्क रह जाते हैं। इसके साथ ही 20 वर्षों में 20 प्रतिशत प्रजातियों के विलुप्त होने की आशंका हो जाती है।

सुभेद्य

इसके अंतर्गत प्रजातियों की वनों में संकटग्रस्त हो जाने की संभावना पायी जाती है तथा प्रजातियों की संख्या में 10 वर्षों में 50 प्रतिशत से अधिक कमी दर्ज की गयी हो, इसके साथ ही 1000 या उससे कम वयस्क सदस्यों की संख्या शेष रह गयी हो।

निकट संकट

इस वर्ग के तहत यह मूल्यांकन किया गया है कि प्रजातियों के निकट भविष्य में संकटग्रस्त हो जाने का खतरा है।

न्यूनतम चिंता

यह वर्ग विस्तृत रूप से तथा घना फैला हुआ होता है। प्रजातियों को बहुत कम खतरा हो अथवा भविष्य में संकटग्रस्त होने का खतरा न हो।

आकड़ों का अभाव

किसी आकलन के लिए आंकड़ों का अभाव होता है। अतः प्रजातियों की वास्तविक स्थिति का मूल्यांकन नहीं किया जा सका है।

जैव-विविधता संरक्षण के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण भारतीय कानून

जैव विविधता से जुड़े कुछ मुख्य महत्त्वपूर्ण नीतिगत कानून इस प्रकार से है:-

- राष्ट्रीय वन नीति- 1988
- राष्ट्रीय पर्यावरण एक्शन प्रोग्राम- 1994
- राष्ट्रीय पर्यावरण नीति- 2006
- पर्यावरण और विकास पर राष्ट्रीय संरक्षण रणनीति एवं नीतिगत वक्तव्य 1992

जैव-विविधता संरक्षण से प्रत्यक्षतः जुड़े हुए प्रमुख भारतीय कानून इस प्रकार हैं:-

- पर्यावरण संरक्षण अधिनियम- 1986
- वन संरक्षण अधिनियम- 1980
- वन्य जीव संरक्षण अधिनियम- 1972
- जैव विविधता अधिनियम- 2002

भारत की जैव विविधता को संरक्षित करने के लिए कि गई कुछ महत्त्वपूर्ण कार्यवाहियाँ।

भारत द्वारा जैव-विविधता के संरक्षण हेतु प्रयास जारी है तथा कुछ महत्त्वपूर्ण कदम इस प्रकार है:-

- राष्ट्रीय जैवविविधता रणनीति और कार्य योजना का निरूपण।
- बाह्य-स्थान संरक्षण वनस्पति उद्यानों, चिड़िया घर इत्यादि की स्थापना।
- कानूनों का अधिनियम और नीतियों का निर्माण।
- यथा स्थान संरक्षण: संरक्षित क्षेत्रों की स्थापना।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

- जैव विविधता संरक्षण हेतु देशी ज्ञान का उपयोग।
- कानूनों का अधिनियम एवं नीतियों का निर्माण।

वन संरक्षण अधिनियम-1980

यह अधिनियम, वन (संरक्षण) नियमावली 1981 के साथ वनों की सुरक्षा एवं संरक्षण को निर्देशित करता है। इस अधिनियम के अंतर्गत निम्नलिखित आते हैं-

- वन भूमि को कृषि गतिविधियां जैसे स्थानांतरित कृषि (Shiffting Cultivation), मवेशियों आदि को चराने हेतु स्वीकृति देना व निषेध।
- किसी क्षेत्र को सुरक्षित वन, वन्यजीव अभ्यारण्य या राष्ट्रीय पार्क के रूप में घोषित करने के मापदण्डों का निर्धारण।

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम-1986

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम-1986 के अंतर्गत निम्न आते हैं:-

- पर्यावरण एवं उससे संबंधित मुद्दों के विषय में प्रावधान निर्धारित करना।
- इस अधिनियम के अंतर्गत मानव गतिविधियों द्वारा पर्यावरण को होने वाले खतरों से निवारण एवं विकास की नीतियों तथा मानकों का प्रावधान करना।
- उद्योगों की अवस्थिति और विभिन्न क्षेत्रों में प्रक्रिया और प्रचलन को जारी रखने के संबंध में निषेध प्रतिबंध।
- पर्यावरणीय प्रदूषकों के उत्सर्जन या निस्सरण के लिए मानक।

वन्यजीव सुरक्षा अधिनियम-1972

वन्य जीव सुरक्षा अधिनियम 1972 (2006 में संशोधित) वन्य जीव को इस प्रकार परिभाषित करता है कोई भी जानवर मधुमक्खी, तितली, मछली, कीट, पतंगे, जलीय एवं स्थलीय वनस्पतियों, जो किसी न किसी आवास के भाग है। यह अधिनियम वन्य जीव संरक्षण नियमावली के साथ पक्षियों और जानवरों और उनसे संबंधित सभी मामले को सुरक्षा प्रदान करता है। यह अधिनियम सभी एक राष्ट्रीय वन्यजीव बोर्ड का प्रावधान करता है, जो कि केन्द्र एवं राज्य को वन्यजीव संरक्षण, वन्यजीव उत्पादों एवं उनके अवैधानिक व्यापार, शिकार पर नियंत्रण के मुद्दों एवं राष्ट्रीय उद्यान एवं वन्यजीव अभ्यारण्य तथा संरक्षित क्षेत्रों को स्थापित करने और उनके प्रबंधन में नीतियों की रूपरेखा बनाने में परामर्श देता है।

यह अधिनियम निम्नलिखित के लिए शक्तिशाली कानूनी ढांचा प्रदान करता है।

- वन्य जीवों के आवास स्थलों की सुरक्षा और प्रबंधन।
- वन्य जीवों के अवैध शिकार एवं व्यापार पर प्रतिबंध स्थापित करना।
- सुरक्षित क्षेत्रों, राष्ट्रीय उद्यानों एवं कम्यूनिटी रिजर्वों की स्थापना।
- चिड़ियाघर प्रबंधन आदि।

जैव-विविधता अधिनियम-2002

जैव विविधता के संरक्षण एवं उसके सतत् उपयोग तथा इससे प्राप्त लाभों को एकसमान एवं न्यायपूर्ण वितरण को सुनिश्चित करने के लिए इस अधिनियम को परित किया गया। इस अधिनियम के अंतर्गत राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण (MBA) जैव विविधता प्रबंधन समिति (BMC), राज्य जैव विविधता बोर्ड (SBB) की स्थापना की गई। इस अधिनियम के अंतर्गत समुदायों एवं स्थानीय लोगों को जैव-विविधता संरक्षण एवं इनके प्रयोग से संबंधित ज्ञान प्राप्त करते हुए उनके साथ इसके लाभों के बंटवारे का प्रावधान करता है। इसके अतिरिक्त यह अधिनियम राज्य के स्थानीय निकायों से विचार-विमर्श के बाद कुछ स्थानों को विरासत स्थल के रूप में पोषित करने का प्रावधान भी करता है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

6. जैव-विविधता का संरक्षण

पृथ्वी पर जीवन का आरम्भ अरबों वर्ष पूर्व हुआ। विभिन्न युगों में पृथ्वी पर नयी प्रजाति की वनस्पतियों तथा जीवों का क्रमिक उद्‌भव हुआ। आज जो जैव विविधता हम देखते हैं वह विकास के इतिहास के करीब 3.5 बिलियन से अधिक वर्षों का परिणाम है। जैवविविधता जीवन का एक तानाबाना है जिस पर हम पूरी तरह से निर्भर रहते हैं। मानव अपने भोजन, औद्योगिक उत्पादों, ऊर्जा, औषधियों आदि आवश्यकताओं की पूर्ति जैविक संसाधनों से करता है। परन्तु मानव की कभी न पूर्ण होने वाली इन्हीं आवश्यकताओं ने सम्पूर्ण जैव विविधता को विनाश के कगार पर ला खड़ा किया है। मानव जनित कारकों ने जीवों व वनस्पतियों की अनेक प्रजातियों को विलोपित कर दिया है, जबकि अन्य कई प्रजातियाँ गंभीर संकट के दौर से गुजर रही हैं। हम जानते हैं, कि जैवविविधता पृथ्वी पर सम्पूर्ण जीवन तंत्र का अपरिहार्य घटक है अर्थात इसके बिना जीवन का बने रहना सम्भव नहीं है। अतः जैविक सम्पदा का विवेकपूर्ण उपयोग तथा संरक्षण किए जाने की महति आवश्यकता है।

जैवविविधता के संरक्षण से आशय प्राकृतिक संसाधनों के योजनाबद्ध प्रबंधन से है जिससे न केवल प्राकृतिक संतुलन को स्थापित किया जा सकता है अपितु जैव विविधता को भी बनाए रखा जा सकता है। इस संदर्भ में स्थानिक तथा जैविक स्तर पर संरक्षण से संबंधित क्रियाविधियों को क्रियान्वित करना है। जैवविविधता का संरक्षण एक वैश्विक चिंता का विषय बन गया है।

जैवविविधता को सुनिश्चित करने के लिए वर्ष 1992 में ब्राजील के रियोडि जेनेरियो शहर में सम्मेलन आयोजित किया गया। इस जैवविविधता संबंधी सम्मेलन (Convention on Biodiversity) को प्रथम पृथ्वी सम्मेलन के नाम से जाना गया।

सी बी डी का उद्देश्य-

सी बी डी के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गए-

- जैव विविधता का संरक्षण।
- जैवविविधता का पोषणीय उपयोग तथा,
- आनुवंशिक संसाधनों के इस्तेमाल से होने वाले लाभों को न्यायोचित एवं समान हिस्सेदारी सुनिश्चित करना।

संरक्षण की विधियाँ (Method of Conservation)

जैवविविधता के संरक्षण के लिए दो विधियाँ समग्र रूप से प्रयोग की जा रही है-

1. स्व-स्थाने संरक्षण (In-situ Conservation)
2. बाह्य-स्थाने संरक्षण (Ex-situ Conservation)

स्व-स्थाने संरक्षण

इसके अंतर्गत पौधों एवं प्राणियों का उनके प्राकृतिक वास स्थान अथवा सुरक्षित क्षेत्रों में संरक्षित किया जाता है। इस प्रक्रिया के अंतर्गत सभी घटक प्रजातियों के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ तैयार की जाती हैं। हानिकारक कारकों का उपचार करके प्रजातियों के लिए स्वस्थ पारिस्थितिक तंत्र का निर्माण किया जाता है इसे पौधों एवं पशुओं के गहन संरक्षण से प्राप्त किया जा सकता है। संरक्षण की इस प्रकिया के तहत् विभिन्न क्रियाविधियों को शामिल किया जाता है, जो इस प्रकार हैं-

संरक्षित क्षेत्र

IUCN के अनुसार, जैवविविधता हेतु संरक्षित क्षेत्र भौगोलिक रूप से चिन्हित किए गए ऐसे क्षेत्र हैं, जिसे कानूनी अथवा किसी अन्य प्रभावी तरीके से मान्यता दी गई है। जिसके जरिए पारितंत्र की सेवाओं तथा उसके सांस्कृतिक मूल्यों को वैधानिक एवं अन्य उपायों से लंबी अवधि के लिए संरक्षित किया जाता है। स्मरणीय है कि संरक्षित क्षेत्र का विकास तब किया जाता है जब कोई प्रजाति बाह्य परजीवियों, विदेशज प्रजातियों के आगमन अथवा मानव की अवांक्षित गतिविधियों से संकटापन्न हो जाती है।

परिरक्षण प्लॉट

ये छोटे आकार के संरक्षित प्राकृतिक क्षेत्र होते है, जिनका उद्देश्य किसी विशेष क्षेत्र के पौधों एवं जीवों का संरक्षण करना होता है।

स्व-स्थाने संरक्षण के अंतर्गत वन्यजीव अभ्यारण्य, राष्ट्रीय, उद्यान, बायोस्फियर रिजर्व तथा पवित्र उपवन आदि आते हैं।

राष्ट्रीय पार्क

राष्ट्रीय उद्यान वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम-1972 के अंतर्गत निश्चित किया गया ऐसा क्षेत्र है जहाँ समृद्ध जैव विविधता वाले पारिस्थितिक तंत्र मौजूद हैं। यह पर्याप्त पारिस्थितिकी, वनस्पतियों (Flora), जीव जन्तुओं (Fauna), भू-आकृतियों तथा जलीय महत्ता वाला क्षेत्र होता है और इसे भावी पीढ़ियों के लिए राष्ट्रीय धरोहर के रूप में सुरक्षित रखा

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

जाता है। यहाँ मानव बसाव की अनुमति नहीं होती तथा पशुचारण भी प्रतिबंधित होता है। यहाँ मानव के प्रवेश की अनुमति है परन्तु किसी भी प्रकार के हथियार को ले जाना प्रतिबंधित है। वन्यजीवों का शिकार अथवा मत्स्यन को भी प्रतिबंधित किया गया है। यहाँ तक की पौधों को संग्रहित करनी तथा उन्हें छति पहुँचाना भी निषेद्ध है। वर्तमान में भारत में कुल 103 राष्ट्रीय उद्यान हैं स्मरणीय है कि जिम कार्बेट को भारत का पहला राष्ट्रीय उद्यान घोषित किया गया।

वन्यजीव अभ्यारण्य

वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम-1972 के. तहत वन्यजीव अभ्यारण्यों का गठन किसी एक प्रजाति अथवा कुछ विशिष्ट प्रजातियों के संरक्षण के लिए किया जाता है अर्थात ये 'विशिष्ट प्रजाति आधारित संरक्षित क्षेत्र' होते हैं। इसका उद्देश्य वन्यजीवों अथवा उनके पर्यावरण का संरक्षण, प्रजनन अथवा विकास से होता है। इस क्षेत्र का पर्याप्त पारिस्थितिकी वनस्पतिय, जीवीय अथवा भू-आकृति महत्व होता है।

राष्ट्रीय पार्क की अपेक्षा यहाँ रहने वाले व्यक्तियों को कुछ अधिकार प्राप्त होते हैं। जैसे अभ्यारण्य में पशु चारण का अधिकार होता है, परन्तु वन्य संरक्षक उस पर नियंत्रण लगा सकता है या उसे पूर्ण वर्जित कर सकता है सन् 2002 से वन्य जीव अभ्यारण्यों से वन्य जीवों तथा वन्य उत्पादों को ले जाने की अनुमति है।

भारत में वर्तमान में 544 अभ्यारण्य हैं।

स्थान	क्षेत्र	वनस्पति [Flora] तथा प्राणिजात [Fauna]
उत्तराखण्ड	– नंदौर	
	– केदारनाथ	– केदारनाथ वन्यजीव अभ्यारण्य 1972 में स्थापित किया गया था।
	– मसूरी	– यहाँ पर स्नो लेपर्ड, ब्लैक बियर, सांभर आदि जीव पाए जाते हैं।
	– अस्कोट सोना नदी	– अस्कोट मृग अभ्यारण्य की स्थापना 1986 में हुआ था। अस्कोट मृग अभ्यारण मुख्य रूप से कस्तूरी मृग के लिए जाना जाता है।
	– सोना नदी	
हिमाचल-प्रदेश	– रेनुका (2013)	– रेणुका वन्य जीव अभ्यारण्य में तेंदुआ, सांभर, पाम सिविट, नीलकंठ पक्षी व हिरण आदि पाए जाते हैं।
	– पोंग लेक	– पोंग लेक वन्यजीव अभ्यारण्य की स्थापना 1954 में हुई थी।
	– चन्द्रताल	
	– तिर्थन	
	– गमगुल सियोबेही	
	– मजाथल	
जम्मू-कश्मीर	– लाचीपोरा	– लाचीपोरा वन्यजीव अभ्यारण की स्थापना 1987 ई. में की गयी थी। यहाँ-अल्पाइन, बर्च, आदि वृक्ष तथा जंगली बकरी प्रचूर-मात्रा में देखे जा सकते हैं।
	– त्रिकुटा	
	– चांग थंग शीत मरुस्थल	– चांगथंग का भौगोलिक विस्तार कश्मीर से लेकर तिब्बत तक है चांगथंग में अनेक वनस्पतियाँ तथा वन्य जीव पाए जाते हैं। यहाँ विशेष रूप में किआंग नामक जंगली गधे को संरक्षण प्राप्त है। अधिक संख्या में मगरमच्छ पाए जाते हैं।

Downloaded From www.studymasterofficial.com

स्थान	क्षेत्र	वनस्पति [Flora] तथा प्राणिजात [Fauna]
		इसके अतिरिक्त मॉनितर लिजर्ड, सांभर आदि भी देखे जा सकते हैं।
	– होकेरसर	
	– जरसोटा	
	– सिमिलीपाल	– सिमिलीपाल वन्यजीव अभ्यारण्य भारत के सबसे विशिष्ट अभ्यारण्यों में गिना जाता है। क्योंकि यहाँ पर बाघ, हाथी, तेंदुआ, चीतल, भौंकने वाले हिरण, ब्लैक बियर, सांभर आदि भी देखे जा सकते हैं।
	– सतकोसिया	
	– नंदनकानन	
	– गहिरमाथा	
	– चिल्का	– चिल्का वन्यजीव अभ्यारण्य हजारों स्थानीय और प्रवासी पक्षियों के आश्रय के लिए जाना जाता है।
	– सुनाबेड़ा	
	– देविगढ़	
	– कोट्टागढ़	
आन्ध्र-प्रदेश	– कोरिंगा – नागार्जुन सागर – कोल्लेरू – नेल्लापट्टू – पुलिकट – रोल्लापाडू – कृष्णा – श्रीलंकमल्लेश्वर – पाखाल	
कर्नाटक	– भद्रा	– भद्रा वन्यजीव अभ्यारण्य के साथ-साथ एक टाइगर रिजर्व भी है।
	– बांदीपुर	– दान्देली वन्यजीव अभ्यारण्य ब्लैक लैपर्ड (काला तेन्दुआ), गौर, हिरण, बाघ, काले भालू आदि वन्यजीवों के प्राकृतिक आवास के लिए जाना जाता है।
	– ब्रह्मगिरी	
	– सरावथी	
	– थिमलापुरा	
	– विलिगिरिरंगा	– विलिगिरिरंगा वन्यजीव अभ्यारण्य 'ब्लैकबक' के लिए प्रसिद्ध है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com

स्थान	क्षेत्र	वनस्पति [Flora] तथा प्राणिजात [Fauna]
	– मलाई महादेश्वरा	
	– तालकावेरी	
	– घाटप्रभा – शेट्टीहल्ली	
तेलंगाना	– श्रीशैलम – प्राणहिता – कवल – मंजीर – पोखल	
गोवा	– बोन्डला	
गुजरात	– गिरनार – कच्छ का रण – गिर – मिटियाल – पोरबंदर – वाइल्ड ऐस – हिंगोलगढ़ – नाल सरोवर – खिजाड़िया – जेस्सोर	– गिर वन्यजीव अभ्यारण्य एक राष्ट्रीय उद्यान भी है। यह एशियाई शेरों का एकमात्र प्राकृतिक निवास स्थान है। गिर को 1969 में वन्यजीव अभ्यारण्य घोषित किया गया था। – कच्छ का रण वन्य जीव अभ्यारण्य जंगली गधों के लिए विश्व प्रसिद्ध है।
तमिलनाडु	– सत्यमंगलम – कोडाईकनाल – नेल्लई – प्वाइंट कैलीमर – मुदुमलाई – वेल्लानाडु – श्रीविल्लिपुथूर – काबिनी	– मुदुमलाई वन्यजीव अभ्यारण्य में हाथी, चीता, तेंदुआ, सांभर, हिरण आदि को संरक्षण प्राप्त है। – श्रीविल्लिपुथुर वन्यजीव अभ्यारण्य में हाथी, शेर के पूँछवाला बंदर, बार्किंग बियर, नीलगिरि ताहर आदि जीव पाए जाते हैं।

Downloaded From
www.studymasterofficial.com

स्थान	क्षेत्र	वनस्पति [Flora] तथा प्राणिजात [Fauna]
केरल	– पेरियार	– पेरियार वन्यजीव अभ्यारण्य हिरण, हाथी, तेंदुआ, सांभर, ब्लैकबियर जंगली सूअर आदि के लिए प्रसिद्ध है। इसे सन् 1977 में टाइगर रिजर्व घोषित किया गया है।
	– इडुक्की	– इडुक्की केरल का एक प्रमुख वन्यजीव अभ्यारण्य है यहाँ बाघ, जंगली भैंस ब्लैक बुलबुल आदि विविध प्रकार के जीव-जन्तु देखे जा सकते हैं।
	– वायनाड	– वायनाड वन्यजीव अभ्यारण्य ब्लैक बियर, जंगली-सीएट, हिरण टाइगर आदि के लिए प्रसिद्ध है।
	– मालाबार – पराम्बिकुलम – थलेक्कड़ – चिन्नार – अर्लम – मंगलवनम् – पीचि वज्हनी – साइलेंट वैली	
पश्चिम बांगल – राम्नाबगच – चिंतामणि पक्षी बिहार	– बुक्सा – महानंदा – रामगंज – सजनाखली – पश्चिमी सुन्दरवन	– बुक्सा वन्यजीव अभ्यारण्य के साथ-साथ टाइगर रिजर्व भी है। यहाँ सीवेट, गौर, इंडियन बोर, हाथी तथा विशेष रूप से बंगाल टाइगर पाए जाते हैं।
असम	– लाखोवा – डीहिंग पटकाप – चक्रशिला – दीपोर बिल – होलीगापर – नांबूर – सोनाय रूपाय	
मिजोरम	– डंपार (Dompar) – पौलरेंग – टावी – थोरांतलाग	

Downloaded From www.studymasterofficial.com

स्थान	क्षेत्र	वनस्पति [Flora] तथा प्राणिजात [Fauna]
मणिपुर	– यांगोपोपकी लाकचाओ	– इस वन्यजीव अभ्यारण्य की स्थापना सन् 1989 की गयी थी।
सिक्किम	– फामबोंग – कीतम	
	– शींगबा – पांगोलखा	
नागालैण्ड	– फकीम – रंगापहर – पुलियबज्ज (Puliebadze)	
मेघालय	– नोंगखैलम – नरपुह – सिजू – भागमारा, पिचेर	
अरूणाचल-प्रदेश	– डिबांग – कामलंग – पक्के (Pakke) – केन (Kane) – मेहायो (Mehao) – ताल घाटी – बाज घोंसला (ईगल नेस्ट) – ईटानगर	– डिबांग अरूणाचल प्रदेश का सर्वप्रमुख वन्यजीव अभ्यारण्य है। इसे सन् 1992 में वन्यजीव अभ्यारण्य घोषित किया गया था। यहाँ पर मस्क डियर लाल पांडा, एशियाई ब्लैक बियर, टाइगर आदि वन्य जीव संरक्षित किए गए हैं।
त्रिपुरा	– रोवा – गुमती – त्रिस्ता – सिपाहीजाला – गुमती	– रोवा एक वन्यजीव अभ्यारण्य के साथ-साथ राष्ट्रीय उद्यान भी है।

भारत के प्रमुख वन्यजीव अभ्यारण्य (WLS)

जैवमंडल अगार/निचय (Biosphere Reserve)

जैवमंडल अगार अथवा निचय एक विशेष प्रकार का आरक्षित क्षेत्र होता है, जिसमें मानव एवं वन्यजीव समुदाय एक-दूसरे के साथ साहचर्यपूर्ण वातावरण में रहते हैं। किसी अगार क्षेत्र का निर्माण लाखों विविध प्रकार के जीवों वनस्पतियों तथा अन्य तत्वों द्वारा होती है। यह उच्चकोटि की विविधता तथा स्थानीयता से समृद्ध क्षेत्र है जैवमंडल अगार अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यूनेस्कों के मानव एवं जैवसमुदाय रिजर्व कार्यक्रम के अंतर्गत आता है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com

जैवमंडल अगार की अवधारणा का उद्‌भव सन् 1968 में यूनेस्कों द्वारा आयोजित बायोस्फियर सम्मेलन में हुआ था। यह अपने तरह का पहला अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन था, जिसमें संसाधनों के उपयोग एवं उनके संरक्षण में संतुलन बनाए रखने की बात कही गई थी ताकि भविष्य में पोषणीय विकास या सतत् विकास [Sustainable development] की अवधारणा के सम्बंध में विचार-विमर्श किया जाए। यदि समग्रता में देखे तो जैवमडंल निचय एक बहुआयामी संरक्षित क्षेत्र है, जिसका उद्देश्य विभिन्न प्रतिनिधि पारिस्थितिक तंत्रों में आनुवंशिक विविधता की रक्षा करना है। जैव संरक्षण मंडल की स्थापना यूनेस्को के 'मानव एवं जैव मंडल योजना' (Man and Biosphere Programme) का भाग है, जिसका क्रियान्वयन 1972 के बाद किया गया। जैव संरक्षण मंडल के तीन मुख्य उद्देश्य हैं-

1. पौधों, जन्तुओं एवं सूक्ष्म प्राणियों के विविधता की रक्षा,
2. पारितंत्रीय संरक्षण एवं अन्य पर्यावरणीय आयामों पर शोध को प्रोत्साहन,
3. शिक्षा, जागरुकता एवं प्रशिक्षण के लिए सुविधाओं का निर्माण।

जैवसंरक्षण मंडल संपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र को समन्वित एवं समुच्चय के रूप में देखता है और इनका चयन सभी प्रकार के जैव प्रादेशिक पारिस्थितिक तंत्रों का प्रतिनिधित्व करने के लिए किया गया है।

जैवमंडल निचय/अगार की संरचना

यूनेस्को द्वारा 1976 ई. में जैवमंडल निचय को निम्नलिखित तीन भागों में वर्गीकृत किया गया।

कोर क्षेत्र [Core Area]

यह जैवमंडल निचय का वह भाग है जहाँ पर किसी प्रकार की आर्थिक अथवा सांस्कृतिक क्रिया की अनुमति नही होती है अर्थात यह जैव विविधता के संरक्षण हेतु सबसे सुरक्षित क्षेत्र है। हालाँकि विशेष परिस्थिति अर्थात गैरविनाशकारी शोध की अनुमति होती है। प्रत्येक जैवमंडल निचय में एक या एक से अधिक कोर क्षेत्र हो सकते हैं।

बफर क्षेत्र [Buffer Zone]

प्रायः कोर क्षेत्र को घेरते हुए गहन पारिस्थितिक गतिविधियों से संबंधित सहकारी क्रियाकलापों के लिए किया जाता है, जिसमें पर्यावरणीय शिक्षा, मनोरंजन तथा व्यावहारिक व आधारभूत शोध शामिल होते हैं।

संक्रमण क्षेत्र [Transitional Zone]

बफर क्षेत्र को चारों ओर से घेरते हुए यह एक संक्रमण क्षेत्र या ट्रांजिशनल जोन होता है। यह किसी भी जैवमंडल का सबसे बाह्य क्षेत्र होता है। इसमें अनेक प्रकार की कृषि गतिविधियाँ, अधिवास एवं अन्य उपयोगी तत्व हो सकते हैं, जिनमें स्थानीय समुदाय, प्रबंधन एजेंसिया, वैज्ञानिक, गैर सरकारी संगठन, सांस्कृतिक समूह, आर्थिक रूचि एवं अन्य हितधारा (Stakholdors) मिलकर क्षेत्र की सम्पोषणीयता के विकास एवं प्रबंधन के लिए कार्य करते हैं।

जैवमंडल अगार के कार्य [Functions of Biosphere Reserve]

जैवमंडल अगार/निचय के अंतर्गत स्थानिक एवं कालिक स्तर पर मानव एवं प्रकृति द्वारा किए गए परिवर्तनों का विश्लेषण किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त पारिस्थितिकी तंत्रों भूमि, प्रजातियों एवं प्रजननिक विविधताओं के संरक्षण को सुनिश्चित किया जा सकता है। जैवमंडल अगार स्थानीय, राष्ट्रीय एवं वैश्विक मुद्दों से संबंधित संरक्षण एवं विकास के लिए शोध, शिक्षा, प्रशिक्षण आदि को संपादित करने का प्लेटफॉर्म प्रदान करता है।

स्थानिक अर्थव्यवस्था के उस पहलू को प्रोत्साहित करना जो सांस्कृतिक सामाजिक एवं पारिस्थितिकी दृष्टि से पोषणीय हो।

जैवमंडल निचय/अगार के लाभ

जैवमंडल निचय का महत्व प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों रूपों में देखा जा सकता है। जैवमंडल निचय का प्रत्यक्ष लाभ जहाँ स्थानीय लोगों और प्राकृतिक संसाधनों को होता है वहीं इसका परोक्ष लाभ वैज्ञानिकों, अनुसंधानकर्ताओं तथा वैश्विक समुदाय को प्राप्त होता है। जैवमंडल निचय पूर्णतया जैविक प्रयोगशालाओं का कार्य करते हैं जहाँ पर भूमि, जल एवं जैवविविधता का एकीकृत प्रबंधन होता है।

जैवमंडल निचय जैवविविधता के संरक्षण तथा मानव द्वारा भूमि के पोषणीय उपयोग से मुक्ति प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र है। ये हमारे प्राकृतिक पर्यावरण के संरक्षण के उत्कृष्ठ उदाहरण हैं। इनसे न केवल स्थानीय समुदाय का अपितु अर्थव्यवस्था का भी पोषणीय विकास होता है।

भारत के जीवमंडल निचयों की यूनेस्को के नेटवर्क में सम्मिलित होने का वर्ष

जीवमंडल के नाम	वर्ष
1. नीलगिरी	2000

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

जीवमंडल के नाम	वर्ष
2. मन्नार की खाड़ी	2001
3. सुन्दरवन	2001
4. नन्दा देवी	2004
5. नोकरेक	2009
6. पंचमढ़ी	2009
7. सिमलीपाल	2009
8. अचनाकमार-अमरकंटक	2012
9. ग्रेट निकोबार	2013
10. अगत्यमलाई	2016
11. कंचनजंगा	2016

Downloaded From www.studymasterofficial.com

पवित्र उपवन एवं झीले (Sacrad groves & Lake's)

प्राचीन काल से ही भारत में ऐसी मान्यताएँ एवं प्रथाएँ प्रचलित रहीं हैं जो प्रकृति संरक्षण पर बल देती हैं। इस संदर्भ में यहाँ पवित्र उपवनों एवं झीलों की अवधारणा भी विकसित हुई। IUCN के अनुसार पवित्र उपवन किसी जनजातीय समुदाय, समाज एवं शासन द्वारा किसी प्रजास्थल के इर्द-गिर्द उपस्थित प्राकृतिक विशेषताओं से समृद्ध क्षेत्र है। इसमें लोगों का सांस्कृतिक एवं धार्मिक जुड़ाव होता है। फलत: ऐसे उपवनों (पेड़-पौधों एवं जलीय उपागमों) के संरक्षण लिए स्वत:स्फूर्त शक्तियाँ कार्य करती हैं। इस क्षेत्र को लोक संस्कृति के लिए समर्पित कर दिया जाता है। किसी विशिष्ट क्षेत्र में कई पीढ़ियों से रह रहे लोगों ने अपनी विशिष्ट परम्परागत जीवन शैली का विकास कर लिया और उन पर आधुनिक प्रौद्योगिकी के संदर्भ में बाह्य प्रभाव कम ही पड़ा है। ऐसे जनसमूह को प्राय: जनजातियाँ आदिवासी मूलवासी कहते हैं। इस समाजों ने प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार का अपना स्थानीय तंत्र स्थापित किया हुआ है और वे उनके सम्पोषणीय तरीके से प्रयोग की विधि जानते हैं। यही कारण है कि अनवर्ती क्षेत्रों में सम्पन्न जैव विविधता और मानव समाज का हजारों वर्षों से बिना किसी महत्त्वपूर्ण क्षति के सहअस्तित्व बना हुआ है।

वर्तमान में भी भारत के ग्रामीण समाज में विभिन्न वृक्षों तथा प्रकृति पूजा के अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं। प्राय: समाज में पवित्र उपवनों को लेकर श्रद्धा इतनी गहरी होती है कि वे यहाँ से सूखी लकड़ियाँ तक नहीं उठाते हैं।

भारत में पवित्र वन निम्नलिखित उदाहरण देखने को मिलते हैं-

- उत्तर-पूर्वी हिमालयी क्षेत्र।
- पश्चिमी मरुस्थलीय क्षेत्र।
- पूर्वी घाट।
- मध्य पठारी क्षेत्र।
- तटीय क्षेत्र।
- पश्चिमी घाट।

वनस्पति उद्यान

यह एक आधुनिक अवधारणा है जिसके अंतर्गत बहुत सी संकटापन्न एवं दुर्लभ प्रजातियों के संरक्षण एवं वृद्धि की व्यवस्था की जाती है। इन उद्यानों में जीवों तथा वनस्पतियों पर विभिन्न प्रकार के शोध आदि भी किया जाता है। राष्ट्रीय वन्यजीव कार्य योजना- 1983 के अनुसार वनस्पति उद्यानों के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं-

- स्थानीय संकटापन्न प्रजातियों का पुर्नवास करना और उन्हें उनके मूल निवास स्थान पर संरक्षित वातावरण में रखना।
- विद्यार्थियों तथा स्थानीय लोगों में वन्य जीवों के सम्बन्ध में जागरूकता लाना तथा उनके महत्व को समझाना
- अधिशेष प्रजातीयों का आर्थिक उपयोग सुनिश्चित करना।

स्मरणीय है कि कोलकाता के निकट स्थित जगदीश चन्द्र बोस बोटेनिकल गार्डेन (शिवपुर) भारत का सबसे बड़ा बोटेनिकल गार्डेन स्थित है। यह सन् 1786 में अंग्रेजों द्वारा स्थापित किया गया था। यह लगभग 100 हेक्टेयर में फैला है, जिसमें 12000 से अधिक वन्य जीव प्रजातियाँ संरक्षण प्राप्त किए हुए हैं।

भारत के प्रमुख वनस्पति उद्यान

चिड़ियाघर:- बाह्य-स्थाने संरक्षण (Ex-situ Conservation) के तहत चिड़ियाघर वह स्थान है जहाँ दुर्लभ एवं संकटग्रस्त पशु-पक्षियों तथा अन्य जीवों को उनके मूल स्थान से पृथक कृत्रिम आवास क्षेत्र में रखा जाता है। स्मरणीय है कि वन्यजीव संरक्षण अधिनियम- 1972 के सेक्सन 38H के अंतर्गत देश में जंतु उद्यानों के विकास की व्यवस्था की गई है। यहाँ उनके प्रजनन और चिकित्सा आदि की भी व्यवस्था होती है। हालाँकि चिड़ियाघर का निर्माण वन्य जीवों के संरक्षण के लिए किया गया और परन्तु धीरे-धीरे ये मनोरंजन तथा आकर्षण के केन्द्र बन गए।

चिड़ियाघर की तर्ज पर ही सफारी पार्क, शेर फार्म भी विकसित किए जाते हैं जिसमें आगंतुकों को उनके पास से गुजरने और समीप आने की अनुमति दी जाती है।

भारत के कुछ महत्त्वपूर्ण जंतु उद्यान इस प्रकार हैं-

- राष्ट्रीय जूलोजिकल पार्क – नई दिल्ली
- इंदिरा गाँधी जूलॉजिकल पार्क – विशाखापत्तनम
- मार्बल प्लेस जू – कोलकाता
- नेहरू जूलॉजिकल पार्क – हैदराबाद
- एलेन फॉरेस्ट जू – कानपुर
- अलियोर जूलॉजिकल गार्डेन – कोलकाता
- राजीवगाँधी जूलॉजिकल पार्क – पुणे
- मैसूर जू – मैसूर
- लखनऊ जू – लखनऊ
- नंदनकानन जूलॉजिकल पार्क – भुवनेश्वर
- मद्रास मगरमच्छ बैंक ट्रस्ट – चेन्नई
- श्री वेंकटेश्वर जूलॉजिकल पार्क – तिरुपति

जीन बैंक:- बाह्य-स्थाने संरक्षण के अंतर्गत जीन बैंकों की स्थापना की जाती है। जीन बैंक एक प्रकार का जीव कोष है, जहाँ आनुवंशिक पदार्थो को सुरक्षित रखा जाता है। जीन बैंकों में फसलों की अलग-अलग प्रजातियों के बीजों को इकट्ठा कर एक निश्चित तापमान पर उन्हे संग्रहित किया जाता है। वृक्षों के जीन को फ्रीज कर संरक्षित किया जाता है। जंतुओं के वीर्य और अंडों को जैविकीय फ्रीज में रखा जाता है। ताकि आवश्यकता पड़ने पर उन्हें प्रयोग में लाया जा सके।

भारत में राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो (1996 ई. में स्थापित) नई दिल्ली-फसल के पौधों के जंगली स्पीशीज तथा उगाई जाने वाली किस्मों के बीजों को संरक्षित रखता है।

जबकि हरियाणा के करनाल में स्थित राष्ट्रीय पशु संसाधन ब्यूरों (The National Bureau of animal Genetic Resaurces) में पालतू पशुओं के आनुवंशिक पदार्थों की रख रखाव किया जाता है। इसी प्रकार राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरों लखनऊ में मछलियों के आनुवंशिक पदार्थों का संरक्षण किया जाता है।

क्रायोप्रिजर्वेशन:- यह विशेषरूप से कायिक संवर्धित फसलों तथा पशुओं के संरक्षण के लिए लाभदायक है। क्रायोप्रिजर्वेशन में जैविक पदार्थों को द्रव नाइट्रोजन में अत्यंत निम्न तापमान (-196°C) पर रखा जाता है तथा सभी उपापचयी प्रक्रियाओं एवं क्रियाकलापों को आवश्यक रूप से निलंबित रखा जाता है। क्रायोप्रिर्वेशन का अनुप्रयोग विभाज्योतक, युग्मनजीय एवं कायिक भ्रूण, पराग, प्रोटोप्लास्ट की कोशिकाएँ तथा अनेक पादप स्पीशीजों के निलंबन संवर्धन पर सफलता के साथ किया जा चुका है।

आण्विक स्तर पर संरक्षण:- उपरोक्त के अतिरिक्त, आण्विक स्तर पर जर्मप्लाज्म संरक्षण अब संभव है तथा इसने अपनी ओर वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित किया है। DNA युक्त पदार्थो अपनी मूल अवस्था में आनुवंशिक संरक्षण के लिए उपयोग किया जा सकता हैं। इसके अलावा जीन बैंकों में संग्रहित मूल्यवान जीनोटाइप दर्शाने वाला अलाभकारी पदार्थ DNA लाइबेरी के स्रोतों के रूप में उपयोग किया जा सकता है, जहाँ से उपयुक्त जीन या जीनों के संयोजन की पुर्नप्राप्ति सुनिश्चित की जा सके।

संरक्षण के भारतीय तथा अंतर्राष्ट्रीय पहल:- भारत ने वन्यजीव संरक्षण के क्षेत्र में कई महत्त्वपूर्ण पहल किया है। जिनके आधार पर विभिन्न जीव-जन्तुओं के संरक्षण तथा परिवर्धन का प्रयास किया गया है।

जैवविविधता के संबंध में वैधानिक प्रयास इस प्रकार हैं-

- भारतीय संविधान के अनुच्छेद-28-ए
- राष्ट्रीय नियम व कानून
- भारीतय वन अधिनियम- 1927
- वन्यजीव सुरक्षा अधिनियम- 1972

Downloaded From www.studymasterofficial.com

- वन संरक्षण अधिनियम- 1980
- पर्यावरण सुरक्षा अधिनियम- 1986
- मत्स्यपालन अधिनियम- 1897 व 1984
- जैव-विविधता अधिनियम- 2002

भारतीय वन अधिनियम-1927

भारतीय वन अधिनियम- 1927 ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत में वन क्षेत्र का संरक्षण तथा वन्य जीवों की सुरक्षा आदि के उद्देश्य से लाया गया था। इसके अतिरिक्त इस एक्ट में रिजर्व फॉरेस्ट को परिभाषित करने का भी प्रावधान है।

आरक्षित फॉरेस्ट

इसके अंतर्गत केन्द्र अथवा राज्य द्वारा बनाए गये वन अधिनियम का उल्लंघन दण्डनीय होता है। इसमें सरकार की अनुमति के बिना किसी भी प्रकार की गतिविधि प्रतिबंधित होती है।

संरक्षित वन

संरक्षित वनों में आरक्षित वनों की अपेक्षा किसी भी प्रकार की क्रिया करना आसान होता हैं। हालाँकि सरकार द्वारा किसी वृक्ष अथवा भूमि पर आवश्यकता अनुसार प्रतिबंध लगाया जा सकता है। इसके खनन, वन उत्पादों के निराकरण (Removal) आदि पर भी प्रतिबंध लगाया जा सकता है।

ग्राम्य वन

इसके अंतर्गत सरकार ग्रामीण समुदाय को वह जमीन दे सकती है जिस पर संरक्षित वन नहीं है। यह भूमि समुदाय द्वारा प्रयोग की जा सकती है। ग्रामीण वन को भारतीय वन अधिनियम-1927 के अंतर्गत अधिसूचित किया गया है। प्रायः यह ग्रामीण भूमि का चारागाह होती है।

वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम-1972

भारत सरकार ने देश के वन्य जीवन की रक्षा करने और प्रभावी ढंग से अवैध शिकार, तस्करी और वन्य जीवन तथा उसके व्युत्पन्न अवैध व्यापार को नियंत्रित करने के उद्देश्य से वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम लागू किया। इस अधिनियम को और अधिक सशक्त बनाने के लिए जनवरी 2003 में संशोधन किया गया। जिसके तहत अपराधों के लिए सजा और जुर्मानों को और अधिक कठोर बना दिया गया। यह अधिनियम देश की पारिस्थितिकीय और पर्यावरण सुरक्षा सुनिश्चित करने के उद्देश्य से वन्य प्राणियों प्रक्षियों और पादपों के संरक्षित विषयों को रेखांकित करने के लिए लाया गया है।

वन (संरक्षण) अधिनियम-1980

भारत में स्थित वनों के संरक्षण के लिए निर्मित यह अधिनियम, बिना सरकार की पूर्व अनुमति के वनों में प्रवेश को निषिद्ध करता है। वन (संरक्षण) अधिनियम 1980 का मुख्य उद्देश्य वनों को विनाश और वन-भूमि को गैर- वानिकी कार्यो में उपयोग से रोकना था। इस अधिनियम के प्रभावी होने के पश्चात् कोई भी वन भूमि केन्द्रीय सरकार की अनुमति के बिना गैर वन भूमि या किसी भी अन्य कार्य के लिए प्रयोग में नहीं लाई जा सकती है। आबादी के बढ़ने तथा मानव जीवन की आवश्यकता को पूरा करने के लिए वनों का कटना स्वाभाविक है अतः ऐसे कार्यो (शहरी आवास तथा आधारभूत संरचना) की योजना बनाते समय वनों के काटने हेतु मार्गदर्शिकायें तैयार की गयी है जिसमें वनों को कम से कम नुकसान हो। इन मार्गदार्शिकाओं या दिशानिर्देशों में निम्न बिन्दुओं पर अधिक ध्यान दिया गया है।

इस अधिनियम के अंतर्गत एक परामर्श समिति (Advisory Committee) के गठन का प्रावधान है, जो अनुदान अथवा वन संरक्षण से संबंधित किसी अन्य विषय के संबंध में (Section-2) सरकार का मार्गदर्शन करती है।

यह अधिनियम इस बात पर बल देता है कि वनों का राजस्व को स्रोत नहीं मानना चाहिए। यह राष्ट्रीय संपदा है जिसे देश एवं देश के लोगों के लिए सुरक्षित रखना चाहिए।

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम-1986

संयुक्त राष्ट्र का प्रथम मानव पर्यावरण सम्मेलन 5 जून, 1972 को स्टॉकहोम में संपन्न हुआ। इसी से प्रभावित होकर भारत ने पर्यावरण संरक्षण के लिए पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम- 1986 पास किया। यह विस्तृत अधिनियम है, जो पर्यावरण के समस्त विषयों को ध्यान में रखकर बनाया गया है। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य वातावरण में घातक रसायनों की अधिकता को नियंत्रित करना व पारिस्थितिकी तंत्र को प्रदूषण मुक्त रखने का प्रयास करना है इसके अंतर्गत शामिल बिन्दु इस प्रकार हैं-

- पर्यावरण का संरक्षण एवं सुधार करना
- मानव पर्यावरण के स्टॉकहोम सम्मेलन के नियमों को कार्यान्वित करना
- पर्यावरण संरक्षण हेतु सामान्य एवं व्यापक विधि निर्मित करना
- मानव, प्राणियों, जीवों, पादपों को संकट से बचाना तथा
- प्रचलित कानूनों के अंतर्गत पर्यावरण संरक्षण प्राधिकरणों का गठन करना व उनके क्रियाकलापों के बीच समन्वय करना आदि

Downloaded From www.studymasterofficial.com

इस अधिनियम के तहत पर्यावरण सुरक्षा एवं स्वास्थ्य को खतरा उत्पन्न करने वालों के लिए दण्ड का भी प्रावधान किया गया है। इसके द्वारा केन्द्र सरकार के पास ऐसी शक्तियाँ आ गई हैं जिनके द्वारा वह पर्यावरण की गुणवत्ता के संरक्षण व सुधार के हेतु व्यापक कदम उठा सकने में सक्षम हो गयी है। इसके तहत इसके केन्द्रीय सरकार को पर्यावरण की गुणवत्ता मानक निर्धारित करने, औद्योगिक क्षेत्रों को प्रतिबंधित करने, दुर्घटना से बचने के लिए सुरक्षात्मक उपाय निर्धारित करने तथा हानिकारक तत्वों का निपटान करने, प्रदूषण के मामलों की जाँच एवं शोध कार्य करने, प्रभावित क्षेत्रों का तत्काल निरीक्षण करने, प्रयोगशालाओं का निर्माण तथा जानकारी एकत्रित करने का कार्य सौंपा गया है।

इस अधिनियम की एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि पहली बार व्यक्तिगत रूप से नागरिकों के इस कानून का विरूद्ध रिपोर्ट कराने का अधिकार प्रदान किया गया है।

राष्ट्रीय पर्यावरण अधिकरण अधिनियम-1995

इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य औद्योगिक दुर्घटनाओं एवं आपदाओं में मानव स्वास्थ्य, संपत्ति तथा पर्यावरण को क्षति होने की अवस्था में शीघ्र एवं प्रभावी क्षतिपूर्ति की व्यवस्था करना है। इसके अतिरिक्त इस अधिनियम में विभिन्न अवस्थाओं में क्षतिपूर्ति की भी व्यवस्था की गयी है जैसे दुर्घटना के दौरान मृत्यु, आंशिक या पूर्ण विकलांगता, सम्पत्ति की क्षति, सरकार द्वारा प्रभावित व्यक्ति को सहायता देने पर आया खर्च, जलीय पौधों, फसलों, सब्जियों, पेड़ों एवं उद्यानों सहित वनस्पतियों को हुई आदि तथा मृदा, वायु, जल, भूमि एवं पारिस्थितिकी सहित पर्यावरण को हुई हानि आदि की क्षतिपूर्ति।

जैव-विविधता संरक्षण अधिनियम-2002

- जैवविविधता का संरक्षण करना तथा उसे भावी पीढ़ियों के लिए बचा कर रखना।
- जैव संसाधनों तक पहुँच तथा इन संसाधनों के समान उपभोग।
- राष्ट्रीय जैव विविधता अथॉरिटी तथा राज्य जैव-विविधता के अधिकार क्षेत्र के जैव संसाधनों संबंधित जानकारी के बारे में बायोडायवर्सिटी मैनेजमेन्ट कमिटी (BMCS) का परामर्श लेना।
- पर्यावरण व जैव-विविधता से संबंधित स्थानीय समुदायों के ज्ञान का आदर करना तथा उसकी सुरक्षा करना।
- जैव-विविधता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में संरक्षण एवं विकास के लिए जैव विविधता धरोहर स्थान (Heritage Sites) घोषित करना।
- इस अधिनियम को लागू करने के लिए राज्य स्तर पर संगठनों अथवा निकायों की भागीदारी सुनिश्चित करना।
- सभी विदेशी लोगों/संस्थानों के लिए जैव संसाधनों/उनसे संबंधित ज्ञान का प्रयोग करने हेतु राष्ट्रीय जैव-विविधता अथॉरिटी की पूर्व अनुमति प्राप्त करना अनिवार्य है। भारतीय उद्योगों के लिए जैव संसाधनों को प्राप्त करने हेतु राज्य बायोडाइवर्सिटी को सूचित करना अनिवार्य है। यदि ऐसा नहीं किया गया तो सम्बंधित कंपनी अथवा संस्थान पर राज्य बायोडाइवर्सिटी बोर्ड पर प्रतिबंध लगाने हेतु अधिकृत है।
- जैव विविधता संरक्षण हेतु फंड जुटाना आदि।

विश्व के ताजे जल की डॉल्फिन

- गंगा-डॉल्फिन (भारत)
- अमेजन डॉल्फिन (ब्राजील)
- सिन्धु डॉल्फिन (पाकिस्तान)
- यांग्टसी नदी डॉल्फिन (चीन)

पृथ्वी सम्मेलन (रियो) 1992 में आयोजित किया गया था। इस सम्मेलन में 27 नियम निर्धारित किए गए जिसे एजेन्डा-21 नाम दिया गया।

कांफ्रेंस ऑफ पार्टीज (COPs) जैव विविधता पर कन्वेशन की गवर्निंग बॉडी है और समय-समय पर होने वाली बैठकों में लिए गए निर्णयों के आधार पर क्रार्यक्रम को आगे बढ़ाती है।

कार्टाजेना जैव सुरक्षा प्रोटाकॉल 29 जनवरी 2000 को अंगीकार किया गया था। यह प्रोटोकॉल 11 सितम्बर, 2003 को लागू हुआ था।

CBD के अन्तर्गत COP-10 का आयोजन जापान के नगोया में हुआ था।

मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल ओजोन क्षरण से संबंधित है। (2000)

COP-7 पर्वतीय पारिस्थितिकी तंत्र, सुरक्षित क्षेत्र, प्रौद्योगिकी का स्थानांतरण तथा प्रौद्योगिकी में सहयोग।

वन अधिकार अधिनियम-2006

वन अधिकार अधिनियम-2006, वन में रहने वाली अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य परंपरागत लोगों के हितों को ध्यान में रखकर निर्मित किया गया है। यह कानून वनों में रहने वाले लोगों के भूमि तथा प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार से जुड़ा हुआ है जिनसे, औपनिवेशिक काल से ही उन्हें वंचित किया हुआ था। इसका उद्देश्य जहाँ एक ओर वन संरक्षण है वहीं

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

दूसरी ओर यह जगलों में रहने वाले लोगों को उनके साथ सदियों तक हुए अन्याय की भरपाई का भी प्रयास है। समग्रता में देखें तो इसके तहत वन में रहने वाले लोगों को वन संसाधनों के उपायों का अधिकार प्रदान किया गया है तथा वन प्रबंधन (Forest Managements) में स्थानीय भागीदारी सुनिश्चित किया जाना है। इसके अतिरिक्त विस्थापन की स्थिति में उनके पुर्नर्वास का भी प्रावधान निहित है।

अन्य प्रमुख कानून और नीतियाँ

- कीटनाशक अधिनियम-1968
- राष्ट्रीय वन नीति-1988
- राष्ट्रीय पर्यावरण नीति-2006

राष्ट्रीय जैव-विविधता कार्य योजना

यह मौजूदा कानूनों उनके क्रियान्वयन के तरीकों एव कार्यक्रमों की पृष्ठभूमि में जैव विविधता संरक्षण को होने वाले खतरों एवं बाधक तत्वों की पहचान करता है। इसके अतिरिक्त एन बी ए पी को देश की पारिस्थितिकी, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक मूल्यों के अनुकूल होने की आवश्यकता है। भारत की सांस्कृतिक विविधता, जिसका जैव भौगोलिक तत्व के साथ घनिष्ठ संबंध है, जैव विविधता से संबंधित किसी भी योजना के लिए एक बड़ी चुनौती पैदा करती है।

नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल (NGT)

पर्यावरण से संबंधित किसी भी कानूनी अधिकार के प्रवर्तन तथा व्यक्तियों एवं संपत्ति के क्षति के लिए सहायता और क्षतिपूर्ति देने या उससे संबंधित या उसमें जुड़े मामलों सहित, पर्यावरण संरक्षण एवं वनों तथा अन्य प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण से संबंधित मामलों के प्रभावी और तीव्र निपटान हेतु राष्ट्रीय हरित अधिकरण, 2010 के अंतर्गत 18 अक्टूबर, 2010 को राष्ट्रीय हरित अधिकरण की स्थापना की गयी।

यह एक विशिष्ट निकाय है जो बहु-अनुशासनात्मक समस्याओं वाले पर्यावरणीय विवादों को संभालने के लिए आवश्यक विशेषज्ञता समूह से युक्त है। अधिकरण सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया बाध्य नहीं होगा परन्तु नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों द्वारा निर्देशित किया जाएगा।

पर्यावरण संबंधी मामलों में अधिकरण का समर्पित क्षेत्राधिकार तीव्र पर्यावरणीय न्याय प्रदान करेगा तथा उच्च न्यायालय में मुकदमेबाजी के भार को कम करने में सहायता करेगा। अधिकरण को आवेदनों या अपीलों के प्राप्त होने के 6 महीने के भीतर उनके निपटान का प्रयास करने का कार्य सौंपा गया है। आरंभिक समय में एवं जीटी को पाँच बैठक स्थलों के स्थापित किए जाने का प्रस्ताव और यह अपना पहुँच सुगम बनाने के लिए सर्किट व्यवस्था का अनुपालन करेगा। अधिकरण की बैठक का मुख्य स्थान नई दिल्ली होगा और साथ ही भोपाल, पुणे, कोलकाता तथा चेन्नई अधिकरण की बैठकों के अन्य चार स्थल होंगे।

स्मरणीय है कि एन जी टी के निर्णयों को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी जा सकती। न्यायमूर्ति आदर्श कुमार ओयल एन.जी.टी के वर्तमान अध्यक्ष हैं।

उपलब्धियाँ

- NGT ने अब तक लगभग 200 से अधिक मामलों का निपटान किया है।
- इसका नवीनतम निर्णय रेत खनन के विरूद्ध है। इसके अनुसार नदियों और समुद्री नितल से रेत का खनन करना अपराध है।
- इसका सबसे चर्चित निर्णय पास्को कम्पनी के विवाद के संदर्भ में था। इसमें स्थानीय लोगों तथा वनों के संरक्षण के पक्ष में ओडिशा में 12 मिलियन टन वाले पास्को के स्टील संयंत्र के विरूद्ध निर्णय दिया था।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

7. पर्यावरण प्रदूषण एवं प्रबंधन

मानव अपने उद्भव काल से ही प्रकृति पर निर्भर रहा है। मानव सभ्यता का जैसे-जैसे विकास होता गया वैसे-वैसे उसकी आवश्यकताएँ भी बढ़ती गयी इसी क्रम में मानव ने अपनी अतृप्त भौतिकतावादी अभिलाशाओं के कारण प्रकृति का अंधा-धुंध विदोहन करना प्रारम्भ कर दिया। 18वीं शताब्दी की औद्योगिक क्रांति ने उपभोक्तावादी संस्कृति को न केवल तीव्र कर दिया अपितु ऐसे उपागमों को जन्म दिया, जो आज स्वयं मानव अस्तित्व को संकट में डाल रहे हैं। औद्योगीकरण, शहरीकरण यातायात साधनों का विकास तथा परमाणु ऊर्जा के उत्पादन आदि ने जहाँ एक ओर मानव जीवन को अधिक सरल व सुविधाजनक बनाया है वहीं, दूसरी ओर प्रदूषण के रूप में एक गंभीर समस्या को भी उत्पन्न किया है। इस प्रदूषण रूपी दानव ने पर्यावरण संतुलन को विरूपित करने का कार्य किया है। फलतः वायु, जल मृदा आदि सभी प्रदूषण के चपेट में आ गए हैं।

प्रदूषक

ऐसे कारक, जो प्रदूषण की दशाएँ उत्पन्न करते हैं प्रदूषण कहलाते हैं। अतः प्रदूषण के अन्तर्गत वह कोई भी भू-रासायनिक, या रासायनिक पदार्थ, जैविक अवयव या इसके उत्पाद या भौतिक कारक, जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानव द्वारा पर्यावरण में इतनी मात्रा में छोड़े जाते हैं कि उनका विपरीत व हानिकारक प्रभाव होता है। प्रदूषकों की सम्पूर्ण क्रियाविधि हम निम्नलिखित रूपों में देख सकते हैं-

- प्रदूषण की अन्तक्रियाएँ (अन्य पदार्थों के साथ भौतिक एवं रासायनिक) यहाँ प्रदूषणें के प्राथमिक एवं गौण प्रकारों का अन्तर समझना आवश्यक है। प्राथमिक प्रदूषक (Primary Pollutant) वे हैं, जिनका प्रभाव अपरिहार्य होता है, जबकि गौण प्रदूषण वे हैं, जो किसी अन्य प्रदूषक या पर्यावरण के साथ अन्तक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं।
- प्रदूषक का स्थायित्व अर्थात् उसका उस अवस्था में बने रहने की क्षमता, जो क्षतिकारक हो।
- प्रदूषक की जीवन आयु अर्थात् वह कितनी अवधि तक सक्रिय रहता है।
- जाति-उद्भवन (Speciation) अर्थात् एक प्रदूषक द्वारा ग्रहण किए जाने वाले रूपों की संख्या। यह जितनी अधिक होगी, उतने ही अधिक तरीकों से प्रदूषक पर्यावरण के साथ क्रिया कर सकता है।
- प्रदूषण भार पर्यावरण में पाई जाने वाली प्रदूषक की कुल मात्रा। इस संबंध में दो अवधारणाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। प्रथम क्रांतिक भार (Critical load) जो प्रदूषक की उस मात्रा का द्योतक है जो किसी पारिस्थितिक तंत्र के क्षतिग्रस्तता का पता लगाने से पूर्व आवश्यक होती हैं तथा द्वितीय लक्षित भार (Target Load) जो प्रदूषण की वह मात्रा है, जो सहनीय या अनुमत (Permitted) है। लक्षित भार आम लोगों के बोध अथवा ज्ञान के परिवर्तन के साथ बदल सकता है।
- विसरण- किसी प्रदूषक के सम्पूर्ण पर्यावरण में आसानी से फैलने की क्षमता।
- जैवसंचयन की क्षमता- यह किसी प्रदूषक की किसी पर्यावरणीय क्षेत्र या किसी लक्ष्य पर टिके रहने की क्षमता का द्योतक है।

नियंत्रण की सहजता:- किसी प्रदूषक को समाप्त करके पर्यावरण को उससे मुक्त करना कितना आसान है? एक साधारण ठोस रिसाव को हटाना सबसे आसान है, तरल को उससे कम और रिसाव को लगभग असम्भव है। यहाँ कुछ गोपनीय मुद्दे भी होते हैं उदाहरण के लिए 1967 में जब पहली तेल टैंकर दुर्घटना हुई (सिसली द्वीप के निकट) तो यही सोचा गया कि इस रिसाव को आसानी से नियंत्रित कर लिया जाएगा। परन्तु दुर्भाग्यवश यह जल नहीं पाया और इसे डिटर्जेंट की सहायता से साफ करने के प्रयास ने जितनी अधिक समस्याएँ उत्पन्न की उतनी तेल ने भी नहीं की थी।

उत्पति तथा स्रोत के आधार पर प्रदूषकों को दो वर्गों में विभाजित किया गया है-

- प्राकृतिक प्रदूषक
- मानव निर्मित प्रदूषक

प्रदूषकों की प्रकृति एवं अवस्था के आधार छः भागों में वर्गीकृत किया गया है-

- **द्रव अपशिष्ट**
- **गैसीय अपशिष्ट**
- **ताप अपशिष्ट**
- **ठोस अपशिष्ट**
- **भारहीन अपशिष्ट**
- **ध्वनि अपशिष्ट**

मूल रूप में प्रदूषण का वर्गीकरण इस प्रकार है:-

वायु प्रदूषण:- विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार, वायु प्रदूषण की परिभाषा ऐसी दशा के रूप में की जाती है, जिसमें बाह्य (Outdoor) परिवेशी वायुमंडल में ऐसे पदार्थों का संकेन्द्रण पाया जाता है, जो मानव एवं उसको घेरे हुए पर्यावरण के लिए हानिकारक हैं। यद्यपि वायु प्रदूषण मानव द्वारा अग्नि की खोज के साथ ही प्रारम्भ माना जाता है परन्तु 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में घटित औद्योगिक क्रान्ति ने इसको बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

साधारण शब्दों में यदि देखें तो, वायुमंडल में गैसों का एक निश्चित अनुपात होता है परंतु बाह्य पदार्थो या गैसों के हस्तक्षेप से यह अनुपात असंतुलित हो जाता है जिसे वायु प्रदूषण कहा जाता है। वायुमंडल अनेक गैसों का मिश्रण होता है। इसमें 78 प्रतिशत नाइट्रोजन, 21 प्रतिशत ऑक्सीजन, 0.9 प्रतिशत आर्गन आदि प्रमुख गैसे हैं।

वायु प्रदूषण के कारण

कुछ स्रोत के आधार पर वायु प्रदूषण को दो वर्गों विभाजित किया जा सकता है।

प्राकृतिक कारण

लम्बी प्रक्रियाओं के पश्चात् दीर्घावधि में वायुमंडल में छोड़े जाने वाले रासायनिक प्रदूषक इस श्रेणी के अन्तर्गत सम्मिलित हैं। वायु में प्राकृतिक प्रदूषण, आंधी-तूफान के दौरान उड़ती हुई धूल, ज्वालामुखी से निकला धुँआ व राख, वनों में लगी आग, दलदल व कीचड़ भरे क्षेत्रों में होने वाली जैविक व रासायनिक क्रियाओं के दौरान निकलने वाली गैसों व फसलों से उत्पादित परागकणों से होता है। हालाँकि इनसे अपेक्षाकृत प्रदूषण काफी कम मात्रा में होता है, जिसका निदान भी प्राकृतिक रूप से ही कुछ समय पश्चात् स्वत: हो जाता है।

मानवीय कारण

वायु प्रदूषण मुख्य रूप से मानवीय स्रोतों से ही होता है। इन स्रोतों में हैं-

- घरेलू कार्यों में ईंधन का प्रयोग
- उद्योगों की चिमनी से निकलने वाले गैसीय अपशिष्ट पदार्थ
- विलयकों के प्रयोग (फर्नीचरों की पॉलिस एवं स्प्रे पेन्ट आदि) द्वारा
- कृषि कार्यों में (कीटनाशक, डीडीटी एवं बीएचसी आदि) के प्रयोग से
- आण्विक विस्फोटों से

वायु-विलय (Aerosoles)

वायुविलय ऐसे कण हैं जो व्यास में एक सेंटीमीटर का एक करोड़वाँ हिस्सा हैं जिसमें सल्फेट, कार्बन, जैव कार्बन तथा खनिज कण होते हैं जो प्राकृतिक रूप से तथा मानव क्रियाकलापों से पैदा हो सकते हैं। सामान्य तौर पर, लटकते पदार्थ या "सस्पेन्डेड मैटर" कहे जाने वाले वायुविलय की परिभाषा हवा में तैरने वाले सूक्ष्म तरल या ठोस कण के रूप में दी जाती है। प्रतिशत वायुजनित विलय प्राकृतिक रूप से पैदा होने वाले कण जैसे धूलकण तथा ज्वालामुखी एवं समुद्री बौछार से निकले कण ही होते हैं। समग्र रूप से 10 प्रतिशत वायुविलय के लिए मनुष्य जिम्मेदार है, मुख्यत: वाहनों से निकलने वाला धुआँ तथा औद्योगिक एवं बायोमास के जलने से ऐसा होता है।

वायुविलय के स्रोत दो प्रकार के होते हैं-

प्रथम मुख्य वायुविलय:- छोटे-छोटे कणों के रूप में सीधे निकलते हैं जैसे कि झाड़ी या जंगल में लगी आग से निकलता धुँआ, उद्योगों, वाहनों, ट्रेनों, हवाई जहाजों में जलने वाले जीवाश्म ईंधन से पैदा होने वाला कार्बन, वायुजनित धूलकण, समुद्री जल के सूखने पर लवण कण आदि।

द्वितीय-गौण वायुविलय:- वायु में होने वाली रासायनिक प्रतिक्रिया मुख्य गैसीय प्रदूषणों जैसे- सल्फर डाइ ऑक्साइड तथा नाइट्रस ऑक्साइड को गैसों में परिवर्तित करती है जो कम वाष्पशील होते हैं। परिणामत: ये कणों के रूप में संघनित हो जाते हैं। उदाहरण के तौर पर, पावर संयंत्रों या अन्य उद्योगों से निकलने वाला सल्फर डाइऑक्साइड प्रदूषण सल्फेट कणों के रूप में परिवर्तित हो जाता है। वन तथा समुद्री जीवों के उत्सर्जन से भी वायुमंडल में गौण वायुविलय पैदा होते हैं। इस तरह पैदा होने वाले उत्पाद नये कणों के रूप में परिवर्तित होते हैं या मौजूदा कणों पर संघनित होते हैं। ये छोटे कण 0.01 माइक्रोमीटर से लेकर सैंकडों माइक्रोमीटर तक हो सकते हैं। उदाहरण के तौर पर सिगरेट के धुएँ से निकले कण मध्यम आकार के होते हैं जबकि बादल की बूंदों का व्यास 10 या उससे अधिक माइक्रोमीटर के होता है। सामान्य परिस्थितियों में अधिकांश वायु-विलय (एअरोसोल) निचले वायुमंडल में हल्की धुंध की तरह छाए रहते हैं जो लगभग एक सप्ताह में बारिश में घुल जाते हैं। दूसरी तरफ, ज्वालामुखी के भंयकर विस्फोट से ऊपरी वायुमंडल में भारी मात्रा में वायु-विलय फैल जाते हैं। चूँकि यह बारिश के रूप में नहीं बरसता है, यह वायुविलय वहाँ पर महीनों रह जाता है।

वायु विलय के स्रोत

औद्योगिक धुलकण:- परिवहन, कोयले के जलने, सीमेन्ट उत्पादन, धातुकर्मीय तथा अपूर्ण भस्मीकरण औद्योगिक धूलकण के स्रोत हैं।

धूलकरण:- उपोष्ण तथा उष्णटिबंधीय क्षेत्रों में वायुविलय के रूप में स्रोत धूलकण होते हैं। 50 प्रतिशत वायु-विलय अस्तव्यस्त मृदा सतहों से उत्पन्न होते हैं।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

कार्बन जनित वायुविलय:- कार्बन यौगिक जिसमें मुख्य रूप से जैव वस्तुएँ तथा कार्बन के विभिन्न रूप शामिल होते हैं, वायुमंडलीय वायु-विलय में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। बायोमास तथा जीवाश्म ईंधन के जलने से ऐसे वायुविलय उत्पन्न होते हैं जो सबमाइक्रान आकार में होते हैं। अपूर्ण दहन प्रक्रिया से कार्बन वायुविलय बनते हैं। जैविक वायुविलय तब पैदा होते हैं जब वायुमंडल में बायोजेनिक हाइड्रोकार्बन की प्रतिक्रिया ऑक्सीजन के साथ होती है।

समुद्री लवण:- समुद्री क्षेत्रों में तेज तूफान के कारण उड़े समुद्री लवण वायुविलय मुख्य रूप से हल्के बिखराव (विसरण) व बादल बनने के लिए उत्तरदायी होते हैं।

प्राथमिक बायोजेनिक वायुविलय

इसमें पादप अवशेष तथा सूक्ष्म जीवों के कण जैसे बैक्टीरिया वायरस एल्गी तथा परागकण शामिल होते हैं।

सल्फेट:- ये वायुविलय सल्फर डाइऑक्साइड जैसी गैसों के रासायनिक प्रतिक्रिया से पैदा होते हैं, जो एन्थ्रोपोजेनिक स्रोतों जैसे-विभिन्न माध्यमों से जीवाश्म ईंधनों का जलना ज्वालामुखी आदि शामिल हैं।

नाइट्रेट्स:- कुछ समय पूर्व तक नाइट्रेट को वायुविलय के रूप में नहीं लिया जाता था। परन्तु इसकी गंभीरता वर्तमान समय में काफी बढ़ गयी है क्योंकि सल्फरडाइ ऑक्साइड उत्सर्जन में कमी के बावजूद नाइट्रोजन के ऑक्साडों के उत्सर्जन में तिगुनी वृद्धि का अनुमान है।

वायुविलय (एयरोसोल) का प्रभाव

वैश्विक ऊष्मन की भाँति बढ़ता वायुविलय या एयरोसोल एक वैश्विक समस्या है। वायुविलय कितना घातक है और उस पर्यावरण में इसका स्तर कितना है, जिसमें लोग रह रहे हैं।

- 2.5 माइक्रोमीटर तक के छोटे कणों को अब मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यधिक हानिकारक समझा जाता है क्योंकि ये छनन तंत्रों (Purifier System) से निकलकर फेफड़े तक पहुँच सकते हैं। इससे फेफड़े के ऊतक सीधे संक्रमित हो सकते हैं और यह फेफड़े की आंतरिक सतह पर फैल जाते हैं जो इसकी कार्यक्षमता कम कर देते हैं।
- वायुमंडल में हाइड्रोक्सिल रैडिकल (O.H) जो निचले वायुमण्डल में मौजूद एक प्रमुख ऑक्सिडाइजिंग रसायन है, जोकी अपने को स्वच्छ रखने की दक्षता को प्रभावित करती है।

वायु प्रदूषक (Air Pollutants)

वायु प्रदूषक के अनेक स्रोत बताए गए हैं। कार्बन डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड, नाइड्रोजन के ऑक्साइड, सस्पेंडेड पार्टिक्यूलेट मैटर, हाइड्रोकार्बन और धातु तत्व आदि खनिज ईंधन जैसे कोयले के जलने से उत्पन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त रासायनिक खाद बनाने से यूरिया की धूल, पेट्रोल दहन से सीसा, एल्युमिनियम उत्पादनों से फ्लोराइड्स, अणु ऊर्जा संयंत्रों से रेडियों धर्मिता आदि उत्पन्न होते हैं।

कार्बन मोनोऑक्साइड:-

कार्बन मोनोऑक्साइड कोयले के दहन एवं गैसोलिन इंजनों से निकलता है। यह वास्तव में कार्बन मोनोऑक्साइड की बड़ी मात्रा नगरीय क्षेत्रों में चलने वाले लाखों ऑटोमोबाईल वाहनों के आन्तरिक दहन के द्वारा वायुमंडल में छोड़ी जाती है। यह तापीय विद्युत संयंत्रों में कोयले के दहन के परिणाम स्वरूप बड़ी मात्रा में उत्पन्न होता है।

- कार्बन मोनोऑक्साइड रक्त की ऑक्सीजन धारण क्षमता को कम कर देता है।
- यह मानव रक्त में हीमोग्लोबिन के साथ संलग्न होकर कार्बोक्सी हीमोग्लोबिन बनाता है, जो कि ऑक्सीजन के परिवहन को नुकसान पहुँचाता है।
- रक्त में 2-5 प्रतिशत कार्बोक्सी हीमोग्लोबिन की उपस्थिति भी शरीर के तंत्रिका तंत्र की सामान्य क्रियाविधि को प्रभावित कर देता है और ऐसा सिर्फ 30ppm कार्बन मोनोऑक्साइड युक्त हवा को श्वास में लेने के पश्चात् ही होने लगता है।

सल्फर डाईऑक्साइड:-

कोयला तथा जीवाश्म ईंधनों के दहन से बड़ी मात्रा में सल्फर डाइऑक्साइड नि:सृत होती है। सल्फर डाइऑक्साइड सूर्य के प्रकाश के साथ क्रिया करके सल्फर ट्राइऑक्साइड (SO_3) का निर्माण करती है। फिर सल्फर ट्राइऑक्साइड नमी के साथ क्रिया करके सल्फ्यूरिक अम्ल (H_2SO_4) का निर्माण करता है, जो धातुओं के क्षरण, यहाँ तक की संगमरमर के क्षरण के लिए जाना जाता है। सल्फ्यूरिक अम्ल वर्षा जल के साथ घुलकर उसे और अम्लीय बना देता है।

नाइट्रोजन डाइऑक्साइड:-

विभिन्न जीवाश्म ईंधनों के दहन से गैसीय नाइट्रोजन (N_2) ऑक्सीजन (O_2) के साथ अभिक्रिया करके नाइट्रिक ऑक्साइड (No) बनाता है, जो शीघ्र ही एक भूरे रंग के एक गैस, नाइट्रोजन डाइऑक्साइड में परिवर्तित हो जाता है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

नाइट्रोजन के ऑक्साइडों का प्रमुख स्रोत वाहनों से निकलने वाला धुँआ, कोयले का दहन और औद्योगिक क्रियाकलाप आदि है। इसके अतिरिक्त नाइड्रोजन डाइऑक्साइड (N_2O) उर्वरकों व मवेशियों के अपशिष्ट से भी निकलती है।

- नाइट्रोजन के ऑक्साइड रोमक क्रियाओं (Cilianction) को रोकते हैं, जिससे धूल एवं कालिख फेफड़ों को प्रभावित करते हैं और श्वास नली-शोथ (Bronchitis) एवं अन्य श्वास संबंधी बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।
- नाइट्रोजन ऑक्साइड आँखों, नाक, गला और फेफड़े में उत्तेजना पैदा करता है तथा अस्थमा के लिए उत्तरदायी होता है।
- नाइड्रोजन ऑक्साइड नाइट्रिक अम्ल एवं नाइट्रेट लवण में बदलने पर पादप वृद्धि को भी अवरूद्ध करते है।
- यह अम्लीय एवं आर्द्र दशाओं में स्मॉग के निर्माण में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

हाइड्रोकार्बन्सः-

जीवाश्म ईंधनों के अपूर्ण दहन से अनेक प्रकार के हाइड्रोकार्बन उत्सर्जित होते हैं। कुछ हाइड्रोकार्बन फोटोकेमिकल स्मॉग के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जबकि उनमें से कुछ अन्य कैंसर जनित भी माने जाते हैं।

फोटोकेमिकल ऑक्सीडेन्ट्सः-

वायु में उपर्युक्त प्राथमिक प्रदूषकों की सूर्य प्रकाश की उपस्थिति में प्रतिक्रिया के फलस्वरूप कुछ गौण प्रदूषकों की उत्पत्ति होती है। इन प्रतिक्रियाओं का सबसे महत्त्वपूर्ण परिणाम प्रकाश रासायनिक स्मॉग (Photochemical Smog) है। जब नाइट्रोजन के ऑक्साइड्स और हाइड्रोकार्बन सूर्य की उपस्थिति में क्रिया करते हैं, तो ये दो गौण प्रदूषकों का निर्माण करते हैं। कोहरा युक्त दिनों में ये रसायन वायुमंडल में उपस्थिति रहते हैं और विविक्त पदार्थों द्वारा अवशोषित हो जाते हैं। इनके द्वारा जीवों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण सभा का चौथा सत्र-2019

हाल ही में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण सभा के चौथे सत्र की बैठक -11 से 15 मार्च के मध्य केन्या के नैरोबी में आयोजित की गई। इस सम्मेलन की थीम "पर्यावरणीय चुनौतियों तथा सतत् उपभोग व उत्पादन हेतु अभिनव समाधान" (Innovative Solution for Environmental Challenges and Sustainable Consumption and Production)।

- भारत ने 'सतत् नाइट्रोजन प्रबंधन' से संबंधित महत्त्वपूर्ण संकल्प की अगुवाई की।

सतत् नाइट्रोजन प्रबंधन

बैठक के दौरान संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण सभा (UNEA-4) ने 'सतत् नाइट्रोजन प्रबंधन' से जुड़ा एक प्रस्ताव पारित किया।

भारत के नेतृत्व में पहली बार प्रस्तावित किया गया यह संकल्प विभिन्न हितधारकों को यह भरोसा दिलाने में सफल रहा कि कार्बन की तरह ही नाइट्रोजन के लिए भी एक अन्तर्राष्ट्रीय समन्वय स्थापित किया जा सकता है।

यह संकल्प स्थलीय, जलीय और समुद्री वातावरण पर प्रतिक्रियाशील नाइट्रोजन के मानवीय उत्सर्जन के कारण उत्पन्न प्रदूषण के खतरों की पहचान करता है। हालाँकि इसने खाद्य और ऊर्जा उत्पादन के लिए नाइट्रोजन के उपयोग के लाभों को भी रेखांकित किया।

स्मरणीय है कि प्रतिक्रियाशील नाइट्रोजन (Reactive Nitrogen) का वैश्विक उपयोग बेहद अकुशल है क्योंकि उपयोग किए गए सभी नाइट्रोजन का 80% भाग पयार्वरण में अवशोषित हो जाता है जिससे मानव स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले प्रदूषण से लेकर ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन जैसे प्रभावों का सामना करना पड़ता है। वायुप्रदूषण, वायु के साथ, दूर-दूर तक आसानी से फैलता है। इसमें मानव स्वास्थ्य, वनस्पति, अन्य जीव-जन्तु, पयार्वरण सभी पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

वायु प्रदूषण के प्रभाव

अन्य प्रदूषण के अपेक्षा वायु प्रदूषण सर्वाधिक दुष्प्रभावकारी होता है।

इससे मानव स्वास्थ, वनस्पति, अन्य जीव-जन्तु पर्यावरण सभी पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। वायु प्रदूषण से पड़ने वाले प्रभावों को हम निम्नलिखित रूप में देख सकते हैं-

- **वनस्पतियों पर प्रभावः-** कुछ गैसीय प्रदूषक जब पत्तों के छिद्रों में पहुँचते हैं तो फसली पौधों के पत्तों को हानि पहुँचाते हैं। वायु प्रदूषकों से पत्तों का लम्बा संपर्क उनकी उस चिकनी सतह को नष्ट कर सकता है, जो पानी की अत्यधिक हानि को रोकने में सहायक है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
Committed to Excellence

- **मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव:-** वायु प्रदूषण का मानव स्वास्थ्य से प्रत्यक्ष संबंध है, क्योंकि मानव द्वारा सांस के रूप में जो वायु ग्रहण की जाती है यदि वह दूषित हो तो इसका सीधा प्रभाव स्वास्थ्य पर होता है। यदि वायु में कार्बन-मोनोऑक्साइड उपस्थित है तो वह रक्त के हीमोग्लोबिन के साथ मिलकर कार्बोक्सी हीमोग्लोबिन बनाती है। कार्बन-मोनोऑक्साइड (CO) ऑक्सीजन (O_2) की तुलना में, 200 गुना अधिकता से हीमोग्लोबिन के साथ क्रिया करती है। अत: कार्बन मोनोऑक्साइड की थोड़ी सी मात्रा भी, रक्त को खराब करने के लिए काफी है। यदि शरीर में इसकी अधिकता हो जाए तो व्यक्ति की मृत्यु भी हो जाती है।

ओजोन पर प्रभाव:-

इसके अतिरिक्त वायुमडल में क्लोरोफ्लोरों कार्बन की अधिकता के कारण ओजोन परत का क्षरण हो रहा है जिसके कारण पराबैंगनी किरणों के बढ़ने पर त्वचा का जलना, मोतियाबिन्द व त्वचा कैंसर जैसे रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

जलवायु पर प्रभाव:-

प्रदूषण से होने वाले वायुमंडलीय परिवर्तन विश्वव्यापी उष्णता के लिए उत्तरदायी है। यह ऐसी परिघटना है जो कार्बन डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइडों, मीथेन और क्लोरोफ्लोरों कार्बन जैसी कुछ गैसों का संकेन्द्रण बढ़ने से उत्पन्न होती है। पृथ्वी पर किए गए अनुसंधानों के रूप में पता चलता है, कि वायुमंडल के जलवाष्प कार्बन डाइडऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रोजन ऑक्साइड और क्लोरोफ्लोरोकार्बन जैसे घटक पृथ्वीतल के निकट अवरक्त (Infra-Red) विकिरण के रूप में गर्मी सोखते हैं।

अम्ल वर्षा:-

अम्ल वर्षा प्राकृतिक तथा मानव निर्मित दोनों स्रोतों से होने वाली परिघटना है। अम्ल वर्षा का निर्माण तब होता है जब कुछ वायुमंडलीय गैसे, जैसे कि कार्बन डाई ऑक्साइड, वातावरण में या धरातल पर पानी के साथ संबंध होते हैं। बारिश में घुलने वाले (CO_2) को कमजोर एसिड (कार्बोनिक एसिड) में परिवर्तित किया जाता है, जबकि सल्फर और नाइट्रोजन के ऑक्साइड सुदृढ़ एसिड (Solid Acid) सल्फ्यूरिक और नाइट्रिक एसिड) होते हैं। अम्ल (Acid) के दो स्रोत महत्त्वपूर्ण है जो इस प्रकार हैं। ज्वालामुखियों और जैविक प्रक्रियाओं से भूमि पर नम और महासागरों में होने वाले उत्सर्जन अपेक्षाकृत छोटे होते हैं और प्रकृति उन्हें अवशोषित कर सकती है।

मानव गतिविधियाँ:-

हाल के दशकों में न केवल यह एक गंभीर समस्या बन कर उभरी अपितु एक वैश्विक रूप भी धारण कर ली है। अम्लीय अवसाद के हानिकारक प्रभाव होते हैं, खासकर जब भू-स्थलीय प्राणियों के लिए PH 5.1 और जलीय प्राणियों के लिए 5.5 से नीचे गिर जाए। इससे मनुष्यों को ब्रोंकाइटिस और अस्थमा जैसे रोग हो सकते हैं।

वायु प्रदूषण स्वास्थ्य के लिए तीसरा सबसे बड़ा खतरा बन गया है। अमेरिका स्थित हेल्थ इफेक्ट इंस्टीट्यूट (एचईआई) और इंस्टीट्यूट ऑफ हेल्थ मैट्रिक्स एण्ड इवेल्यूएशंस (आईएचएमई) की ओर से जारी स्टेट ऑफ ग्लोबल एयर, 2019 रिपोर्ट के अनुसार, दूषित वायु धूम्रपान से भी ज्यादा मौतों का कारण बन रही है। वायु प्रदूषण के कारण 2017 में दुनियाभर में 49 लाख मौतें हुई हैं। कुल मौतों में 8.7 प्रतिशत योगदान वायु प्रदूषण का रहा।

भारत में वायु प्रदूषण के कारण 2017 में 12 लाख लोगों ने जान गंवाई है। यह आउटडोर (बाहरी), हाउसहोल्ड (घरेलू) वायु और ओजोन प्रदूषण का मिलाजुला नतीजा है। इन 12 लाख मौतों में से 6, 73, 100 मौतें आउटडोर पीएम-2.5 की वजह से हुई, जबकि 4, 81, 700 मौतें घरेलू वायु प्रदूषण के चलते हुईं। भारत के अलावा चीन में 12 लाख, पाकिस्तान में एक लाख 28 हजार, इंडोनेशिया में एक लाख 24 हजार, बांग्लादेश में एक लाख 28 हजार, नाइजीरिया में एक लाख 14 हजार, अमेरिका में एक लाख आठ हजार, रूस में 99 हजार, ब्राजील में 66 हजार और फिलीपींस में 64 हजार मौतों की वजह दूषित हवा बनी है। वायु प्रदूषण दुनियाभर में बीमार लोगों की संख्या में बेहताश वृद्धि कर रहा है।

ओजोन प्रदूषण पिछले एक दशक में बड़ा खतरा बनकर उभरा है। साल 2017 में ओजोन प्रदूषण के कारण दुनियाभर में करीब पाँच लाख लोगों की समय से पूर्व मौत हुई। 1990 के बाद इसमें 20 प्रतिशत इजाफा हुआ है और ज्यादातर इजाफा पिछले दशक के दौरान हुआ है।

रिपोर्ट के अनुसार, भारत में वायु प्रदूषण के कारण लोग समय से पूर्व मर रहे हैं और उनकी आयु 2.6 साल कम हुई है। आउटडोर पीएम के कारण जहाँ 18 महीने जीवन प्रत्याशा कम हुई, वहीं घरेलू प्रदूषण के चलते इसमें 14 महीने की कमी आई। यह कम जीवन प्रत्याशा के वैश्विक औसत (20 महीने) से बहुत अधिक है।

वायु प्रदूषण से होने वाली एक चौथाई मौतें भारत में, ओजोन प्रदूषण बड़ा खतरा वायु प्रदूषण से भी बढ़ रहा है मुधमेह कार्यालयों के भीतर वायु प्रदूषण की मार ज्यादा गंभीर प्रदूषण से कितनी राहत देगी कृत्रिम बारिश?

भारत में समय से पूर्व मृत्यु सांस की बीमारियों, हृदय की बीमारियों, हृदयाघात, फेफड़ों के कैंसर और मधुमेह से जुड़ी है और यह सीधे तौर पर वायु प्रदूषण से प्रभावित है। ओजोन प्रदूषण फेफड़ों की बीमारियों को बढ़ाता है। वायु प्रदूषण से

Download From www.studymasterofficial.com
Committed to Excellence

होने वाली मौतों में 49 प्रतिशत फेफड़ों की बीमारियों, 33 प्रतिशत फेफड़ों के कैंसर, मधुमेह और हृदय की बीमारियों का 22-22 प्रतिशत और हृदयाघात का योगदान 15 प्रतिशत रहा।

अध्ययन में पहली बार वायु प्रदूषण को टाइप-2 मधुमेह से जोड़ा गया है। भारत के लिए यह बेहद चिंता की बात है क्योंकि यह महामारी का रूप ले चुका है। रिपोर्ट में कहा गया है कि 2015 में मधुमेह की आर्थिक लागत वैश्विक अर्थव्यवस्था का 1.8 प्रतिशत थी और यह भी देशों के स्वास्थ्य तंत्र के लिए तेजी से बढ़ती चुनौती है। अध्ययनकर्ता काफी विचार-विमर्श और अनुसंधान के बाद इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि पीएम 2.5 टाइप-2 मधुमेह के मामलों और मृत्यु को बढ़ाता है।

ग्लोबल बर्डन डिसीज 2017 के विश्लेषण में भी पीएम- 2.5 को उच्च रक्तचाप और अत्यधिक मोटापे के बाद टाइप-2 मधुमेह से होने वाली मौतों के लिए तीसरा सबसे बड़ा खतरा बताया गया था। पीएम-2.5 से होने वाले टाइप-2 मधुमेह से दुनियाभर में वर्ष 2017 में 2, 76, 000 मौतें हुईं। भारत में यह खतरा बहुत बड़ा है। यहाँ पीएम-2.5 के कारण 55,000 मौतें हुई हैं। बीमारियों और खासकर टाइप-2 मधुमेह का खतरा कम करने के लिए व्यापक रणनीतियाँ बनानी होंगी।

विश्लेषण बताता है कि दुनिया की अधिकांश आबादी अस्वस्थ परिस्थितियों में जी रही है। 90 प्रतिशत से अधिक आबादी विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) द्वारा निर्धारित हवा के मानकों के अनुसार हवा में सांस नहीं ले रही है।

वायु प्रदूषण के नियंत्रण का उपाय:-

वायु प्रदूषण का नियंत्रण दो अंतसंबंधित स्तरों पर-वैधानिक और प्रौद्योगिकीय स्तर पर किया जा सकता है। वैधानिक उपागम के अन्तर्गत वायु की गुणवत्ता संबंधित मानकों का निर्धारण किया जाता है। भारत में भारत मानक ब्यूरों (The Bureau of Indid Standards), जो पूर्व में इंडियन स्टैंडर्ड इंस्टीट्यूट (ISI) के नाम से जाना जाता था, इस प्रकार के मानकों का निर्धारण करता है। इस मानक का निर्धारण क्षेत्र के विकास की विस्तृत एवं समावेशी विकास की आवश्यकता के अनुरूप ही होना चाहिए।

भारतीय वायु गुणवत्ता मानकों को तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है-

निवारक उपाय

निवारक उपायों द्वारा वायु प्रदूषण की मात्रा को नियंत्रित करने हेतु अनेक उपाय किए जाते हैं। जैसे तेजी से सड़कों पर बढ़ते वाहनों की संख्या को नियंत्रित करना ऊर्जा का प्रयोग घटाकर, ऊर्जा का अधिक दक्षतापूर्ण प्रयोग करके और ऊर्जा के गैर-दहन स्रोतों पर अधिकाधिक आश्रित होकर (जैसे-सौर एवं पवन ऊर्जा) कुछ विशेष क्षेत्रों में किसी उद्योग की स्थापना को प्रतिबंधित करके अथवा कुछ सुरक्षा उपायों के अनुपालन के साथ स्थापित करके उद्योगों के चारों ओर कुछ विशिष्ट प्रदूषण सहज एवं कणों को फिल्टर करने वाली पादप प्रजातियों सहित हरित पेटी के रूप में रोपण करके तथा सड़कों की देख-रेख उन पर नियंत्रित एवं योजना बद्ध ट्रैफिक चलाकर तथा उनसे अनावश्यक चेक-पोस्टों व अवरोधों को हटाकर आदि।

Note:- वाहनों द्वारा उत्सर्जन शहरी प्रदूषण का सबसे बड़ा कारण है। वर्ष 2018 की एक रिपोर्ट के अनुसार दिल्ली (NCR) के कुल वायु प्रदूषण में मोटर वाहनों का लगभग 40% योगदान है।

उपचारी उपाय

वायु प्रदूषण के उत्सर्जक गैसों से घातक पदार्थों को दूर करके तथा उत्सर्जन गैसों में से घातक प्रदूषकों को हानि रहित बनाकर या कम घातक पदार्थों में परिवर्तित करके भी घटाया जा सकता है। इनमें से प्रथम उपागम अर्थात् उत्सर्जन स्रोत से हानिकार पदार्थों को दूर करने की विधि स्थैतिक दहन स्रोतों (Station Combusion Saures) के लिए और दूसरी विधि अर्थात् हानिकारक पदार्थों को कम हानिकारिक पदार्थों में परिवर्तित कर देने की विधि गतिशील दहन स्रोतों के लिए उपयोगी है।

प्राकृतिक उपाय

- वर्षा व हिमपात भी वायु प्रदूषण को स्वच्छ करने में प्रभावी भूमिका निभाते हैं।
- प्रबल पवनें प्रदूषकों को दूर हटा देती हैं या उन्हें स्वच्छ हवा के साथ मिश्रित कर प्रदूषकों को कम कर देती हैं।
- महासागरों द्वारा लवणीय जल स्प्रे द्वारा भी हवा में लटके विविक्तों एवं जल में घुलित प्रदूषकों को दूर किया जाता है।

वायु प्रदूषण से निपटने के लिए सरकार की पहल:-

- हाल ही में सरकार ने राष्ट्रीय इलेक्ट्रिक मोबिलिटी मिशन प्लान (NEMMP) की घोषणा कि है। इसके तहत पर्यावरण हितैषी एवं उच्च क्षमता वाले हाइब्रिड और इलेक्ट्रिक वाहन का निर्माण करना है जिससे 2020 तक 1.5 प्रतिशत CO_2 उत्सर्जन में कमी की जा सकती है।
- राष्ट्रीय वायु गुणवत्ता सूचकांक।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
Committed to Excellence

वायु गुणवत्ता सूचकांक:-

वायुमंडल के प्रमुख प्रदूषक कार्बन मोनो ऑक्साइड (CO), सल्फर डाइ ऑक्साइड (SO_2), अमोनिया (NH_3), लेड (Pb), नाइट्रोजन डाइ ऑक्साइड (NO_2) एवं कण पदार्थ (Particulate Matter-PM) हैं। स्वच्छ भारत अभियान के तहत 17 अक्टूबर, 2017 को पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन राज्यमंत्री (स्वतंत्र प्रभार) प्रकाश जावडेकर ने 'वायु गुणवत्ता सूचकांक' (Air Quality Index- AQ) जारी किया। वायु गुणवत्ता सूचकांक (AQI) की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं-

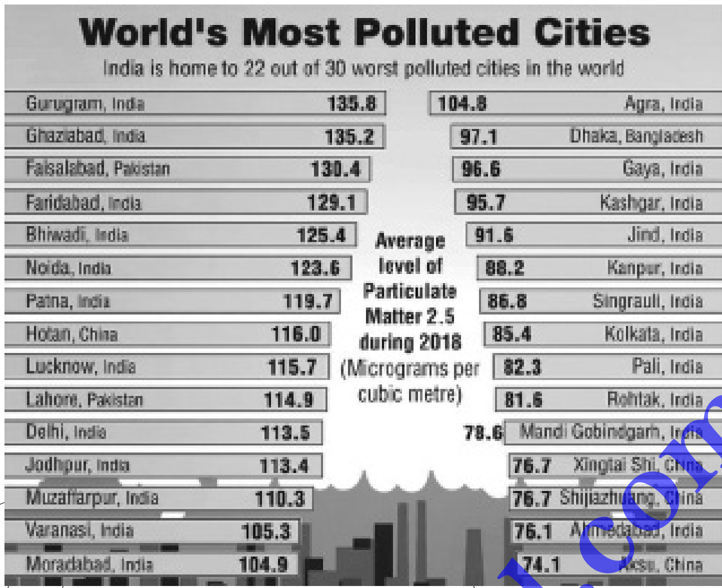

- इस सूचकांक में आठ प्रदूषकों को शामिल किया गया है। ये प्रदूषक PM10, PM2.5, NO_2, SO_2, CO, O_3, NH_3 और Pb हैं।
- PM10 का तात्पर्य है, ऐसे कार्बनिक पदार्थ जिनका व्यास 10 माइक्रोमीटर या उससे कम हो।
- PM2.5 का तात्पर्य है, ऐसे कण पदार्थ जिनका व्यास 2.5 माइक्रोमीटर या उससे कम हो।
- वायु गुणवत्ता सूचकांक के अंतर्गत 6 वर्ग रखे गए हैं। प्रत्येक वर्ग का अलग-अलग कलर कोड (Colour Code) है।

वर्ग	AQI सीमा	कलर कोड
अच्छा	0-50	हरा
संतोषजनक (Satisfactory)	51-100	धानी
सामान्य प्रदूषित (Moderately Polluted)	101-200	पीला
खराब (Poor)	201-300	नारंगी
अतिखराब (Very Poor)	301-400	लाल

राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम-भारत

जून, 1972 में स्टॉकहोम में आयोजित 'संयुक्त राष्ट्र मानव पर्यावरण सम्मेलन' (United Nations Conference on Human Environment) में लिए गए निर्णयों के कार्यान्वयन के लिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 253 के तहत 'वायु (प्रदूषण रोकथाम एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981' (Air (Prevention and Control of Pollution) Act, 1981) को लागू किया गया।

दिल्ली: वायु गुणवत्ता पूर्व चेतावनी प्रणाली: वर्तमान परिदृश्य 15 अक्टूबर, 2018 को केन्द्र सरकार द्वारा दिल्ली के लिए वायु प्रदूषण भविष्यवाणी प्रणाली शुरू की गई। इस प्रणाली को 'वायु गुणवत्ता पूर्व चेतावनी प्रणाली' (Air Quality Early Warning System) कहा जाता है। पूर्व सूचना के आधार पर अब वायु प्रदूषण का मुकाबला करने में मदद् मिलेगी।

ध्वनि प्रदूषण (Noise Pollution)

विकास के क्रम में मानव ने ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न की हैं, जो आज उसके ही जीवन को संकट में डाल रही हैं। वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण आदि की तरह भले ही ध्वनि प्रदूषण की भयावहता स्पष्ट नजर न आती हो, परन्तु इसका प्रभाव किसी आपदा से कम नही है। वस्तुत: वह प्रक्रिया जिसमें अति तीव्र ध्वनियाँ बार-बार व लगातार सुनाई दे, ध्वनि प्रदूषण कहलाता है।

ध्वनि प्रदूषण औद्योगिकरण, आधुनिक तकनीकीकरण व यातायात के साधनों के विकास से उत्पन्न समस्या है। निरंतर बढ़ते नगरीय ध्वनि प्रदूषण की भयावहता को देखते हुए 1972 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा ध्वनि को प्रदूषण के एक अंग के रूप में परिभाषित किया गया। साधारण शब्दों में कहें तो एक सामान्य व्यक्ति के लिए 50-60 डेसिबल तीव्रता की ध्वनि का श्रवण उपयुक्त होता है। इससे अधिक तीव्रता की ध्वनि स्वास्थ्य के लिए अहितकर होता है।

ध्वनि प्रदूषण के स्रोत

उद्भव के आधार पर ध्वनि प्रदूषण को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है-

प्राकृतिक स्रोत:- बहुत सी प्राकृतिक क्रियाएँ भी ध्वनि प्रदूषण के लिए उत्तरदायी होती हैं। जैसे ज्वालामुखी विस्फोट,

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

बादलों का गरजना, बिजली का कड़कना, भूकम्प व तीव्र चक्रवात आदि। हालाँकि ये कारक स्थानीय होते हैं तथा इनका प्रभाव भी अल्पावधिक होता है।

मानव जनित या कृत्रिम स्रोत:-मानव सभ्यता के उद्भव के साथ-साथ ऐसे उपागमों का सृजन होता गया, जो एक तरफ जीवन को सरल और सुविधाजनक बनाने के साथ-साथ गंभीर संकट भी उत्पन्न कर रहा है। औद्योगिक और यातायात साधनों का निरंतर विकास, इलेक्ट्रिक उपकरणों द्वारा ध्वनि विस्तार विभिन्न प्रकार के श्रव्य उपकरणों का विकास तथा अनेक मानवीय क्रियाओं से उत्पन्न आवाजें ध्वनि प्रदूषण का कारण बन जाती हैं। ध्वनि प्रदूषण के स्रोतों को निम्न रूपों में विभक्त करके देखा जा सकता है।

- **यातायात के साधनों द्वारा:**- शहरी क्षेत्रों में यातायात के साधनों का निरंतर विकास हो रहा है और वाहनों की संख्या तीव्र गति से आगे बढ़ रही है। स्थलीय परिवहन के विभिन्न साधन जैसे- कारें, बस, ट्रक, मोटर बाइक, पुलिस तथा एम्बुलेंस सायरन आदि ध्वनि प्रदूषण के प्रमुख स्रोत हैं।
- **औद्योगिकी इकाईयों व मशीनों द्वारा:**- ध्वनि प्रदूषण का एक प्रमुख कारण औद्योगिक इकाईयों व मशीनों के चलने से उत्पन्न शोर है। उद्योगों से होने वाले ध्वनि का सर्वाधिक प्रभाव वहाँ कार्य करने वाले मजदूरों व कर्मचारियों पर पड़ता है क्योंकि उन्हें ऐसे वातावरण में कार्य करना पड़ता है।
- **अवसंरचना निर्माण के दौरान:**- जिन शहरों या स्थानों पर निर्माण भवन, ओवर ब्रिज, मेट्रो, सड़कें आदि कार्य हो रहा होता है, वहाँ ध्वनि प्रदूषण अपने चरम स्तर पर दर्ज किया जाता है।
- **मनोरंजन के साधनों व सांस्कृतिक क्रियाकलाप:**- ध्वनि प्रदूषण का एक प्रमुख कारक मनोरंजन के विभिन्न साधनों तथा सांस्कृतिक क्रियाकलापों द्वारा उत्पन्न शोर है। भारत में प्राय: चुनाव के दौरान, विवाह समारोहों धार्मिक उपलक्ष्यों, जन्मदिवस आदि के समय लाउड स्पीकरों, डीजे व अन्य ध्वनि यंत्रों द्वारा बड़े पैमाने पर ध्वनि प्रदूषण होता है।

ध्वनि प्रदूषण का प्रभाव

90 डेसिबल से अधिक ध्वनि वाले वातावरण में बहरापन, मानसिक तनाव, चिड़चिड़ापन हृदय रोग में वृद्धि एवं सृजनात्मक क्षमता को प्रभावित करता है।

डेसिबल (DB) पर्यावरणीय दशा (Environmental Condition)

0 श्रवणशक्ति की अवसीमा		
10	→	पत्तों की सरसराहट
20	→	प्रसारण स्टुडियो
30	→	रात में शयनकक्ष
40	→	पुस्तकालय
50	→	शांत कार्यालय
60	→	बातचीत (एक मीटर की दूरी पर)
70	→	औसत रेडियो
74	→	हल्के यातायात का शोर
90	→	सबवे ट्रेन
100	→	सिफनी आर्केस्ट्रा
110	→	रॉक संगीत का बैंड
120	→	हवाई जहाज का प्रस्थान (Tak of)
146	→	कष्ट की अवसीमा

Downloaded From www.studymasterofficial.com

ध्वनि प्रदूषण का परिवेशी मानक (डेसिबल में)

क्षेत्र	dB दिन के समय	dB रात्रि के समय
शांत क्षेत्र	50	40
आवासीय क्षेत्र	55	45
व्यावसायिक क्षेत्र	65	55
औद्योगिक क्षेत्र	75	70

- ध्वनि प्रदूषण का सर्वाधिक दुष्प्रभाव पक्षियों जीव-जन्तुओं पर पड़ता है। तीव्र ध्वनि से जन्तुओं के हृदय मस्तिष्क एवं यकृत को भी हानि पहुँचती है। शहरी क्षेत्रों से अनेक पक्षियों के विलोपन का प्रमुख कारण ध्वनि प्रदूषण को माना जा रहा है।
- ध्वनि प्रदूषण से नवजात शिशुओं के जन्म पर भी प्रभाव पड़ता है। गर्भ में पल रहे शिशु भी ध्वनि के कुप्रभाव से ग्रसित होता है। गर्भस्थ शिशु के हृदय की धड़कन ध्वनि के कारण असामान्य गति से बढ़ जाता है। यह स्थिति नवजात शिशु के श्रवण शक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि भारत मे प्रतिवर्ष लगभग 1 लाख से अधिक बच्चे जन्मजात बधिर होते हैं। हाल ही में अमेरिका में सवा दो लाख नवजात शिशुओं का परीक्षण करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला गया कि शांत स्थानों में रहने वाली महिलाओं की तुलना में ध्वनि के लगातार सम्पर्क में रहने वाली महिलाओं के शिशुओं में जन्मजात विकृतियाँ अधिक थीं।
- अधिक ध्वनि वाले परिवेश में रहने से नींद न आने की आम समस्या देखी गयी है। नींद न आने तथा मानसिक विकृति के फलस्वरूप पागलपन का दौरा भी देखा जा सकता है।
- मानव मस्तिष्क की बाह्य नसों में से एक नस श्रवण तंत्र होती है इसे 'स्वर तंत्रिका' भी कहते हैं। स्वर तंत्रिका पर तेज ध्वनि का परिणाम कभी-कभी इतना घातक होता है कि इससे सुनने की शक्ति थोड़ी या पूरी तरह समाप्त हो सकती है।
- विभिन्न रिसर्चो में यह तथ्य सामने आया है कि भारत के मेट्रोपॉलिटन नगरों में औसत ध्वनि अंतर्राष्ट्रीय रूप से मान्य सीमा से काफी अधिक है। मुम्बई, नई दिल्ली एवं कोलकाता की सड़कों पर सामान्यतया ध्वनि का स्तर 95dB से अधिक पाया जाता है।

वास्तविक समय निरंतर परिवेश ध्वनि निगरानी (Real time Continuous Ambient Noise Monitoring) द्वारा 9 भारतीय शहरों (नई दिल्ली, मुम्बई, नवी मुम्बई, थाणे, चेन्नई, कोलकाता, लखनऊ, बंगलूरू, हैदराबाद) के 35 स्थानों पर ध्वनि प्रदूषण का मापन किया जा रहा है।

ध्वनि प्रदूषण पर नियंत्रण के उपाय

वर्तमान में ध्वनि प्रदूषण एक जटिल प्रश्न बनकर उभरा है। हालाँकि इसकी प्रभाविता तात्कालिक रूप से भले न ज्ञात हो, किन्तु इसका दूरगामी प्रभाव अवश्य होता है। फिर भी ध्वनि प्रदूषण ऐसी समस्या नहीं है कि इसको नियंत्रित न किया जा सके। अपितु कुछ साधारण उपाय, कुछ तकनीकी परिवर्तन और कुछ सामान्य व्यवहार में परिवर्तन कर एक सीमा तक ध्वनि प्रदूषण को नियंत्रित किया जा सकता है।

ध्वनि प्रदूषण के नियंत्रण के संदर्भ में निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं-

स्रोत पर नियंत्रण

- वे उद्योग जिनमें अत्यधिक ध्वनि उत्पन्न होती हो, उन्हें आवासीय क्षेत्रों से इतना दूर स्थापित करना चाहिए कि उसका प्रभाव लोगों पर ना पड़े।
- औद्योगिक संरचना का निर्माण करते समय उच्च तकनीक की मशीनों का उपयोग व साउन्ड प्रूफ दीवारों का निर्माण इसके साथ ही साथ मशीनों का सुचित रखरखाव
- नगरों के बाहर रिंग रोड (Ring Road) का निर्माण करना चाहिए तथा भारी वाहनों का नगर के भीतर प्रवेश सीमित करना चाहिए।
- तीव्र हॉर्न वाले वाहन तथा पुराने जीर्णशीर्ण वाहन जो अत्यधिक ध्वनि उत्पन्न करते हैं। उनके सड़कों पर चलने पर रोक लगानी चाहिए।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
Committed to Excellence

- यातायात के नवीन सार्वजनिक संसाधनों जैसे- मेट्रो, इलेक्ट्रिक बस व हाइपरलूप ट्रेन आदि का विकास किया जाना चाहिए।
- शहरों मे आवासीय क्षेत्रों के पास स्थित हवाई अड्डे ध्वनि प्रदूषण के लिए एक जटिल समस्या हैं। फलतः जेट इंजन के ध्वनि को नियंत्रित करने हेतु उनके टर्बोजेट पर ध्वनिशोषक के प्रयोग को और बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
- मनोरंजन के ऐसे साधनों अथवा यंत्रों को नियंत्रित किया जाना चाहिए जो 70 डेसिबल से अधिक ध्वनि उत्पन्न करते हों। इसके साथ ही सार्वजनिक मंचों पर एवं समारोहों में तेज ध्वनि यन्त्रों के प्रयोग पर नियंत्रण लगाना चाहिए।

तात्कालिक उपाय

ध्वनि प्रदूषण से प्रभावित क्षेत्रों में जागरूकता का संचार करना तथा इसके दुष्प्रभावों व बचाव के प्रति सचेत करना। ध्वनि प्रदूषण रोधी उपायों/उपकरणों/ साउन्ड प्रूफ हेलमेट, साउन्ड प्रूफ दरवाजे व खिड़कियों तथा ईयरबड्स आदि का प्रयोग करना।

लाउड स्पीकरों, डीजे तथा मोटर वाहनों में प्रयुक्त तीव्र हॉर्नों को प्रतिबंधित करना।

दीर्घकालिक उपाय

- सड़कों, हाइवे, रेल कॉरिडोरों आदि के किनारे बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण करना।
- शहरों व आबादी वाले क्षेत्रों में भारी वाहनों के प्रवेश को निषिद्ध करना।
- ध्वनि प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए नियंत्रक कानूनों को कठोर व प्रभावी बनाना।
- यातायात के सार्वजनिक संसाधनों को बढ़ावा देना।
- ध्वनि प्रदूषण रोधी उन्नत तकनीकी का प्रयोग आदि।

जल प्रदूषण (Water Pollutants)

जल के प्राकृतिक स्वरूप में बाह्य तत्वों (मानव जनित तथा प्राकृतिक दोनों) के मिश्रित हो जाने से जब विकृति आ जाती है तो वह जीव जगत के लिए हानिकारक हो जाता है, यह स्थिति जल प्रदूषण कहलाती है। दूसरे शब्दों में "जल की रासायनिक, भौतिक और जैविक विशिष्टताओं में मुख्यतः मानवीय क्रियाओं से जो अवनति आती है उसे ही जल प्रदूषण कहा जाता है।

प्रदूषक पदार्थों की प्रकृति के आधार पर जल प्रदूषण को भौतिक, रासायनिक और जैव श्रेणियों में विभक्त किया जाता है। भौतिक जल प्रदूषण से जल का रंग, गन्ध स्वाद, तापक्रम प्रभावित होता है जबकि रासायनिक जल प्रदूषण के अन्तर्गत अनेक हानिकारक रसायनों का जल में सम्मिश्रण हो जाता है। जैव जलप्रदूषण से बैक्टिरिया या सूक्ष्म जीवाणु जल में मिल जाते हैं। ये सभी सामूहिक रूप से प्रभाव डालते हैं, किन्तु प्रभाव का परिणाम भिन्न-भिन्न होता है।

जल प्रदूषण के स्रोत

जल प्रदूषण किसी एक प्रदूषक के द्वारा उत्पन्न नहीं होता अपितु इसके लिए अनेक कारक उत्तरदायी हैं। यद्यपि कहीं एक स्रोत या कारण प्रमुख हो जाता है तो कहीं एक से अधिक। अधिकांशतः जल प्रदूषण का कारण मानव द्वारा विभिन्न पदार्थों का जल में निस्तारण है किन्तु कुछ प्राकृतिक स्रोत भी जल प्रदूषण के कारक होते हैं। जल प्रदूषण के स्रोत निम्नलिखित हैं।

प्राकृतिक स्रोत (Natural Saurces of Water Pollution)

विभिन्न प्राकृतिक अन्तक्रियाओं द्वारा भी जल प्रदूषण होता हैं। जैसे- बाद, सुनामी तथा भूंकप आदि द्वारा बडे पैमान पर जल प्रदूषण होता है। यह प्रदूषण मंद और कभी-कभी सामयिक होता है। जैसे वर्षा काल में नदियों, तालाबों का जल मृदा के कणों के मिश्रण से अत्यधिक मटमैला हो जाता है जो कुछ समय पश्चात् स्वतः ठीक हो जाता है। जल में प्राकृतिक रूप से शुद्ध होने की क्रिया होती रहती है।

मानवीय स्रोत (Human Sources of Water Pollution)

- घरेलू बहि:स्राव (Domestic Effluent)
- वाहित मल (Sewage)
- औद्योगिक बहि:स्राव (Industrial Effluent)
- शहरी बहि:स्राव तथा अपशिष्ट (Urbon Effluent and Wastes)
- रेडियों धर्मीय अपशिष्ट द्वारा (Radioactive Wastes)
- कृषि बहिस्राव (Agricultural Effluent)
- तापीय प्रदूषण (Thermal Effluent)
- तेल अधिप्लाव (Oil Spills)

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

घरेलू बहि:स्राव (Domestic Effluent)

जनसंख्या वृद्धि तथा बढ़ते शहरीकरण जैसे कारकों ने घरेलू बहि:स्राव तथा अपशिष्ट के समुचित निस्तारण हेतु गंभीर चुनौती उत्पन्न की है। उचित प्रबंधन के अभाव में घरेलू बहि:स्राव सीधे नदियों तथा अन्य जलाशयों में जाता है। जिससे व्यापक स्तर पर जल प्रदूषण की समस्या उत्पन्न होती है। सामान्यतया यह माना गया है, कि शहरी क्षेत्रों में प्रतिदिन प्रति व्यक्ति द्वारा 135 लीटर जल प्रयोग में लाया जाता है। मानव द्वारा प्रयोग किए गए इस जल का 75 से 80 प्रतिशत भाग विविध उपयोग के पश्चात् बहा दिया जाता है। घर की नालियों में, मोहल्ले और नगर के सीवर लाइनों में बहता हुआ जल अनेक प्रकार की अशुद्धियों से युक्त होता है। एक ओर इसमें कुड़ाकरकट, घर की गन्दगी का मिश्रण होता है तो दूसरी ओर साबुन या अन्य सफाई के प्रयोग में लिए गए पदार्थों का। इसमें कागज, कपड़ा, राख, सड़े-गले पदार्थ और न जाने कितने हानिकारक पदार्थ, जिनमें रोगी के उपचार में प्रयोग किए गए कपड़े, रूई, बची हुई दवाईयाँ मृत जीव व कीटनाशक आदि भी शामिल होते हैं। डिटर्जेंट जल खण्ड की प्राकृतिक संरचना में परिवर्तन के साथ-साथ इनके फॉस्फेट को भी प्रदूषित कर देता है।

वाहित मल (Sewage)

जल प्रदूषण का एक प्रमुख कारण वाहित मल है। जनसंख्या में वृद्धि ग्रामों का कस्बों तथा नगरों मे तथा महानगरों में परिवर्तित होना इस समस्या को और अधिक गंभीर बना रहा है। मानव की यह प्रकृति है कि वह मल-मूत्र एवं अन्य गन्दगी को बाहर बहा देता है जो नालियों में बह कर अन्त में नदी अथवा अन्य जल स्रोत में पहुँच जाता है। यही नहीं यदि यह भूमि में भी समा जाता है तो इसका कुछ भाग भूमिगत जल में मिश्रित होकर उसे भी प्रदूषित कर देता है।

औद्योगिक बहि:स्राव (Industrial Effluent)

औद्यौगिक उत्पादन गतिविधियों में वृहद् पैमाने पर जल का उपयोग किया जाता है। यह जल उत्पादन प्रक्रिया से चलता हुआ अन्त में औद्योगिक बहि:स्राव के रूप में निकलता है। इस जल में अनेक कार्बनिक एवं अकार्बनिक तत्व मिले होते हैं, जिनमें से अनेक हानिकारक होते हैं। उद्योगों से निकला हुआ यह जल नदियों झीलों या वृहद् तालाबों में या समुद्र में प्रवाहित कर दिया जाता है।

वर्तमान युग में रासायनिक उद्योगों एवं इनसे संबंधित उद्योगों का विकास तीव्र गति से हो रहा है। लगभग 9000 संश्लेषित रासायनिक यौगिक, व्यापारिक गतिविधियों में प्रयुक्त हो रहे हैं इनमें प्रतिवर्ष 300 से 500 नए जुड़ते जाते हैं। इनसे प्लास्टिक, प्रसाधन, पेन्ट मेडिकल अपशिष्ट, डिटरजेन्ट और अनेक उपभोक्ता वस्तुओं का कागज उद्योग, चमड़ा उद्योग, चीनी उद्योगों आदि से रसायन मिश्रित जल बाहर निकलता है जिसे विभिन्न जलाशयों में डाल दिया जाता है। इससे न केवल जल की गुणवत्ता में कमी आती है अपितु वह जहरीला भी हो जाता है। जिससे जलीय जीवों तथा मानव स्वास्थ्य पर घातक परिणाम परिलक्षित होते हैं।

इनमें कार्बन पदार्थ भी होते हैं जिनका बैक्टीरिया द्वारा निम्नीकरण मंद गति से होता है। इसी प्रकार अकार्बनिक पदार्थों में सोडियम पोटैशियम, कैल्शियम, अमोनियम, क्लोराइड, नाइट्रेट, सल्फेट आदि के आयन जल को प्रदूषित बनाते हैं।

जल प्रदूषत के सन्दर्भ में पारा प्रदूषण का उल्लेख आवश्यक है। पारा द्रव अवस्था में पाई जाने वाली धातु है जो अधिक तापमान पर वाष्पीकृत होकर विषैली वाष्प उत्पन्न करता है। पारा यौगिक अत्यधिक विषैले होते हैं। विश्व में प्रतिवर्ष लगभग 10 हजार टन पारा निकाला जाता है, इसमें से लगभग आधा किसी न किसी रूप में पर्यावरण में प्रविष्ट हो जाता है। इस सन्दर्भ में जापान तट के निकट स्थित मिनीमाता खाड़ी (Minimata) दूर्घटना का उल्लेख आवश्यक है जो जल में पारा प्रदूषण के फलस्वरूप हजारों लोगों की मृत्यु लिए जाना जाता है।

कृषि बहि:स्राव (Agriculture Effluent)

कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए आज रासायनिक उर्वरकों जैसे नाइट्रेट्स फास्फेट् यूरिया आदि का प्रयोग अधिक किया जाने लगा है। ये रसायन जल के साथ बहकर जल को दूषित करते हैं। इनमें शैवाल (एल्गी) में भी वृद्धि हो जाती है जो प्रदूषण का कारण बनती है। अधिकांश कीटनाशक दवाओं में विषैले पदार्थ जैसे पारा, क्लोरीन, फ्लोरिन, सल्फर फास्फोरस आदि मिले रहते हैं जो जल में मिश्रित हो जाने पर मनुष्य एवं अन्य जीवों पर विपरीत प्रभाव डालते हैं। डी.डी.टी. (D.D.T) अर्थात् डायक्लोरो डाइफिनाइल ट्राइक्लोरो मिथाइल मिथेन का प्रयोग सम्पूर्ण विश्व में कीटनाशक के रूप में किया जा रहा है।

रेडियोधर्मी अपशिष्ट द्वारा जल प्रदूषण (Radioactive Wastes)

वर्तमान समय में ऊर्जा प्राप्त करने में एवं हाथियारों के निर्माण में रेडियोधर्मी पदार्थों का उपयोग हो रहा है। एक ओर न्यूक्लियर हथियारों का निर्माण हो रहा है तो दूसरी ओर न्यूक्लियर ऊर्जा हेतु परमाणु रिएक्टरों के निर्माण को बढ़ावा दिया जा रहा है। रेडियो ऐक्टिव पदार्थ सदैव विखण्डन की प्रक्रिया से गुजरते हैं तथा इनके अपशिष्ट पदार्थ भी कम या अधिक रेडियो एक्टिव होते हैं। ये पदार्थ शीघ्र समाप्त न होकर सैकड़ों से हजारों वर्षों तक बने रहते हैं। यदि वे किसी प्रकार मानव शरीर में प्रवेश कर जाते हैं तो अत्यधिक हानि का कारण बनते हैं।

Downloaded From www.studymasterofficial.com

तापीय प्रदूषण

ऊर्जा संयंत्रों से बड़ी मात्रा में अत्यधिक गर्म जल निसृत होता है जो बहता हुआ विभिन्न जलाशयों में जाता है। इससे सम्पूर्ण जलीय पारितंत्र के नष्ट होने का खतरा उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार समुद्र में न्यूक्लियर परीक्षण के दौरान उस जलीय क्षेत्र का तापमान अत्यधिक गर्म हो जाता है। जिसके परिणामस्वरूप बड़ी मात्रा में मछलियाँ, कोरल आदि नष्ट हो जाते हैं।

तेल रिसाव (Oil Spills):- समुद्री जल प्रदूषण में तेल रिसाव अथवा तेल अधिप्लाव का अत्यधिक योगदान है। विश्व भर में तेल की भारी मात्रा का परिवहन समुद्री मार्ग से होता है। भारत में कच्चे तेल की मात्रा का 70 प्रतिशत समुद्री मार्ग से आयात हो रहा है। समुद्री मार्गों में तेल टैंकरों के दुर्घटनाग्रस्त होने से तेल रिसाव के कारण तथा तेल उत्खनन के कारण वृहद पैमाने पर जल प्रदूषण होता है। इससे समुद्री मछलियाँ, समुद्री प्लैंकटन व समुद्री जीवों की भारी छति होती है। हाल ही में इंडोनेशिया के बोर्नियों द्वीप के पास हुए तेल रिसाव के कारण वहाँ की सरकार ने आस-पास के क्षेत्रों में आपातकाल की घोषणा की थी।

तेल रिसाव का स्थानीय पर्यटन उद्योग, मत्स्य उद्योग तथा समुद्री व्यापार पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इससे जलीय पारितंत्र को सबसे अधिक क्षति पहुँचती है।

जल प्रदूषण का नियंत्रण (Control Water Pollution)

बढ़ते जल प्रदूषण की समस्या के समाधान के लिए अनेक उपायों की चर्चा की जा सकती है। इसके नियंत्रण हेतु विकसित देश उन्नत तकनीक का प्रयोग करने लगे हैं और एक सीमा तक उन्होंने जल प्रदूषण पर नियंत्रण भी स्थापित कर लिया है। किन्तु विकासशील देश इस अत्यंत महंगी तकनीक प्रयोग हेतु असमर्थ दिखाई देते हैं। विश्व के अधिकांश देशों ने जल प्रदूषण के नियंत्रण हेतु कानून बनाए हैं। परन्तु इस समस्या का समाधान सिर्फ कानून निर्मित करने से नहीं होगा। अपितु इसके लिए आम जनता को सचेष्ट होना होगा तथा प्रकृति व प्राकृतिक संसाधनों के प्रति अपने व्यवहार का शुद्धीकरण करना होगा। तभी हम किसी ठोस निष्कर्ष पर पहुँच सकते है।

मृदा प्रदूषण (Soil Pollution)

मृदा खनिजों, वायु, जल, कार्बनिक पदार्थों तथा विभिन्न जीवित संघटनाओं से बनी होती है। यह पापदों को यांत्रिक स्थिरक स्थान देने के साथ-साथ उनके लिए पोषकों और जल भंडारण का कार्य भी करती है। मृदा में विभिन्न प्रकार के लवण, खनिज तत्व, कार्बनिक पदार्थ, गैसें एवं जल एक निश्चित अनुपात में होते हैं। मिट्टी में उपर्युक्त पदार्थों की मात्रा एवं अनुपात में विभिन्न कारणों द्वारा उत्पन्न परिवर्तन मृदा प्रदूषण कहलाता है।

शहरीकरण, औद्योगीकरण, जनसंख्या वृद्धि तथा वैज्ञानिक या आधुनिक कृषि उत्पादन प्रणाली आदि ने भूमि पर व्यापक पैमाने में अपशिष्ट निसृत किया है। एक लम्बे अर्से से यह प्रक्रिया चलती आ रही है और अपशिष्ट निस्तारण के प्रति गंभीरता तथा उत्साह उतना नहीं देखने को मिलता जितने की आवश्यकता है। फलतः इस कुप्रबंधित अपशिष्ट द्वारा मृदा का एक बड़ा भाग प्रदूषित हो चुका है।

यह प्रदूषित मृदा न केवल विभिन्न मूल्यवान तथा उपयोगी वनस्पतियों के विलुप्त होने का एक कारक बनी है, अपितु मानव तथा विभिन्न जीव जन्तुओं के लिए संकट भी उत्पन्न किया है।

मृदा प्रदूषण के कारण

विभिन्न वनस्पतियों की वृद्धि के लिए 16 खनिज तत्वों की आवश्यकता होती है, एक स्वस्थ मृदा में लगभग 13 तत्व पाए जाते हैं। इन तत्वों में किसी की भी सान्द्रता में कमी या वृद्धि हो, तो मृदा प्रदूषित कहलाती है। मृदा प्रदूषण के लिए निम्नलिखित कारक उत्तरदायी हैं-

नगरीय अपशिष्ट (Urban Waste)

बढ़ते शहरीकरण ने कूड़ा प्रबंधन के रूप में एक गंभीर समस्या उत्पन्न की है। यदि वर्तमान स्थिति पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि विश्व में, विशेषकर विकासशील देशों में शहरी अपशिष्ट प्रबंधन का सर्वथा अभाव है। इन देशों में खुले मैदान में कूड़ा-करकट निस्तारित कर दिया जाता है। इससे अपशिष्ट में मौजूद प्लास्टिक थैले व बोतल, काँच, फाइबर गुड्स, नायलॉन, धातु आदि मृदा में मिलकर उसे प्रदूषित कर देते हैं।

- **औद्योगिक अपशिष्ट (Industrial Waste):-** यह मृदा प्रदूषण का एक बहुत बड़ा कारण है। उद्योगों से निकलने वाले अपशिष्टों में मिली धातुएँ, धातु ऑक्साइड, क्षार, अम्ल रंजक पदार्थ, कीटनाशक, रसायन आदि भूमि पर बहा दिया जाता है, इनसे मृदा की गुणवत्ता प्रभावित होती है।
- **कृषि उत्पादन बढ़ाने:-** के लिए उर्वरकों, कीटनाशकों तथा रासायनिक पदार्थों का प्रयोग निरंतर बढ़जा जा रहा है। इनके अत्यधिक प्रयोग के कारण मृदा के रासायनिक तथा भौतिक स्वरूप में भारी परिवर्तन होता जा रहा है। उर्वरकों तथा रासायनों का अत्यधिक प्रयोग बैक्टीरिया सहित सूक्ष्म जीवों को भारी नुकसान पहुँचाता है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
committed to excellence

- **मृदा अपरदन (Soil Erosion):-** भी मृदा प्रदूषण का एक प्रमुख कारक है। मृदा कणों का वायु, जल आदि माध्यमों से स्थानांतरित हो जाना, मृदा अपरदन कहलाता है। मृदा अपरदन से विशेषकर पहाड़ी क्षेत्रों में कृषि भूमि में कमी आती है, बाढ़ व सूनामी आदि से भूमि की उर्वरता प्रभावित होती है।
- **अम्ल वर्षा (Acid Rain):-** मृदा प्रदूषण का सबसे प्रभावी कारक है। अम्ल वर्षा के फलस्वरूप मृदा में अम्ल की अधिकता हो जाती है। तथा उसका PH मान कम हो जाता है। यदि मृदा का PH मान 6 से नीचे है तो, मृदा बहुत अम्लीय मानी जाती है। अम्ल वर्षा मृदा की उपजाविता को प्रभावित करता है। कनाडा नार्वे व स्वीडन आदि देश अम्ल वर्षा से सर्वाधिक प्रभावित देश हैं। अम्ल वर्षा के कारण यहाँ पर बागानी फसलों को काफी क्षति पहुँची है।
- खनन उद्योग द्वारा कृषि भूमि पर बड़ी मात्रा में अपशिष्ट निस्तारित किया जाता है। खनन अपशिष्ट वर्षा जल के सम्पर्क में आकर मृदा को व्यापक पैमाने पर प्रदूषित करता है।
- **लवणीय जल (Saline Water):-** प. राजस्थान, तटीय गुजरात आदि क्षेत्रों में मृदा प्रदूषण का महत्त्वपूर्ण घटक है। लवणयुक्त जल से सिंचाई करने पर मृदा की ऊपरी परत धीरे-धीरे अनुपजाऊ हो जाती है।
- इसके अतिरिक्त विषैले पदार्थों लीकेज, ठोस अपशिष्टों की डंपिंग, तेल रिसाव आदि भी मृदा प्रदूषण के उत्तरदायी कारक हैं।

मृदा प्रदूषण का प्रभाव (Effect of Soil Pollution)

मृदा प्रदूषण के विभिन्न प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं, जो इस प्रकार हैं-

- प्रदूषित मृदा में उपजायी जाने वाली फसलें तथा फल, सब्जियाँ आदि भी प्रदूषित होती हैं। फलतः इनका उपयोग करने पर गंभीर स्वास्थ्य समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। मृदा प्रदूषण के चलते खाद्य वस्तुओं में कैंसरकारी तत्व कार्सिनोजेन पाया जाता है।
- कीटाणुनाशक, शाकनाशक तथा कवकनाशक विषैली दवाएँ भूमि की प्राकृतिक ऊर्वरता को कम कर, मृदा को टॉक्सिक बना देती हैं।
- मृदा प्रदूषण के कारण मृदा में निहित सूक्ष्म जीव बैक्टीरिया आदि नष्ट हो जाते हैं। जिससे न केवल मृदा की उर्वरता प्रभावित होती है अपितु खाद्य चक्र भी प्रभावित होता है।
- मृदा प्रदूषण के फलस्वरूप मृदा क्षारीयता, मृदा अम्लीयता, मृदा उर्वरता व मृदा की जल धारण क्षमता प्रभावित होती है।
- मृदा प्रदूषण फसल उत्पादकता पर नकारात्मक प्रभाव उत्पन्न करती है। विश्व की लगभग 30 प्रतिशत भूमि लवणीकरण की समस्या से ग्रस्त है।

मृदा प्रदूषण को नियंत्रित करने के उपाय

- शहरी तथा औद्योगिक अपशिष्टों का समुचित प्रबंधन
- रासायनिक उर्वरकों कीटनाशकों, पेस्टिसाइड्स आदि का सीमित उपयोग तथा इनके विकल्प के रूप में जैविक कृषि को प्रोत्साहन देना।
- मृदा प्रदूषण रोकने के लिए आधुनिक वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी का उपयोग किया जाना चाहिए।
- 3R's तथा 4R's (Reduce, Reuse and Recycle and Reduce Reuse, Recycle Recover) का तकनीक का प्रयोग।
- वृक्षारोपण जैसे पारंपरिक विधियों को बढ़ावा दिया जाना है।
- लवण युक्त जल से सिंचाई को प्रतिबंधित कर ड्रिप सिंचाई जैसे नवीन पद्धतियों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

रेडियोऐक्टिव प्रदूषण (Radio Active Pollution)

नाभिकीय प्रदूषण पर्यावरणीय प्रदूषणों में सर्वाधिक हानिकारक प्रदूषण हैं। रेडियों धर्मी कचरा वह कचरा है जिसमें रेडियों धर्मी पदार्थ मौजूद हों। परमाणु ऊर्जा उत्पादन के विभिन्न चरणों के दौरान उत्पादित अपशिष्ट पदार्थ को सामूहिक रूप से परमाणु कचरे के रूप में जाना जाता है। इस कचरे से उत्पन्न विकिरण प्रदूषण को नाभिकीय प्रदूषण कहा जाता है। सामान्य रूप में यदि देखें तो रेडियोधर्मी प्रदूषण मुख्य रूप से वायुमंडल में बमों के बिस्फोट व परीक्षण के द्वारा परमाणु बिजली घरों के अपशिष्ट कचरे द्वारा, परमाणु संयंत्रों में नाभिकीय रिसाव से हो रहा है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

नाभिकीय ऊर्जा जनन के समय 'प्राकृतिक रेडियोसक्रिय पदार्थों' को विभिन्न प्रक्रियाओं से गुजरना होता है जिससे उत्पन्न अपशिष्टों का तद्नुसार प्रबंधन व विनियोजन किया जाता है। सम्पूर्ण नाभिकीय ऊर्जा चक्र में बहुत से रेडियो धर्मी पदार्थ उत्सर्जित होते हैं। इसके अतिरिक्त, यूरेनियम विखण्डन के द्वारा उत्पादित रेडियोसक्रिय पदार्थ ट्रांसयूरेनिक तत्व एवं ईंधन की पुनर्योजित व्यवस्था में पृथक होने वाले पदार्थ आते हैं। प्राकृतिक यूरेनियम अयस्क, सान्द्रण, संवर्धन से लेकर सम्पूर्ण नाभिकीय ईंधन चक्र प्रक्रम में होने वाले परिवर्तनों के दौरान अत्यधिक घातक रेडियोसक्रिय पदार्थ उत्पन्न होते हैं।

नाभिकीय प्रदूषण के प्रमुख स्रोत

- प्राकृतिक यूरेनियम
- कोबाल्ट
- थोरियम
- स्ट्रॉन्शियम

विकिरण प्रदूषण का प्रभाव

विकिरण अथवा नाभिकीय प्रदूषण का पड़ने वाला प्रभाव न केवल तात्कालिक होता है अपितु दीर्घकालिक भी। अन्य प्रदूषकों की अपेक्षा विकिरण प्रदूषण जीवों पर अधिक खतरनाक प्रभाव डालते हैं।

- विकिरण प्रदूषण के कारण जीन एवं गुणसूत्रों के लक्षणों में परिवर्तन हो जाता है। इसका ज्वलंत उदाहरण द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जापान के नागासाकी तथा हीरोशिमा पर अमेरिका द्वारा गिराए गए परमाणु बमों के प्रभावों को देख सकते हैं। इन परमाणु विस्फोटों से दोनों शहरों की लगभग सम्पूर्ण जनसंख्या समाप्त हो गयी। इतना ही नहीं विकिरण से प्रभावित लोगों के आनुवांशिक लक्षण बदल गए थे।
- ऐसा देखा गया है, कि परमाणु ऊर्जा केन्द्रों के आस-पास के वातावरण में रेडियोएक्टिव स्रावित होता रहता है। इस रेडियो ऐक्टीय पदार्थों में से एक पदार्थ ट्रीटियम है। यह हवा से जमीन में पहुँचता है। यह प्रक्रिया वर्षा के दिनों में अधिक होती है।
- पौधों की आयु, उनकी वृद्धि दर, फल व बीजांकुर आदि की प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

विकिरण प्रदूषण का प्रभाव मृदा पारितंत्र तथा जलीय पारितंत्र आदि पर भी देखा गया है।

ताप प्रदूषण (Thermal Pollution)

ताप विद्युत गृहों में ईंधन के दहन से विनाशकारी गैस द्रव एवं ठोस पदार्थ निकलते हैं जो पर्यावरण को घातक नुकसान पहुँचा रहे हैं। ताप प्रदूषण का सबसे अधिक प्रभाव जलीय जीवों पर पड़ रहा है। ताप प्रदूषण के कारण जल के तापमान में अप्रत्याशित वृद्धि होती है जिसके फलस्वरूप जलीय पारितंत्र में निवास करने वाले जीव नष्ट हो जाते हैं। वस्तुतः वायु तापमान की अपेक्षा जल का तापमान अधिक स्थिर रहता है इसीलिए तापमान में अचानक वृद्धि के प्रति जलीय जीव अनुकूलित नहीं होते हैं और तापमान में 1°C की कमी या वृद्धि जलीय जीवों पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

ताप प्रदूषण के प्रमुख कारक

- कोयला आधारित विद्युत संयंत्र
- परमाणु ऊर्जा संयंत्र
- औद्योगिक बहिस्राव
- ज्वालामुखी उद्गार
- गहरे सागरीय गीजर
- तटीय क्षेत्रों में वनाग्नि

ताप प्रदूषण प्राकृतिक व मानवीय दोनों कारणों से हो रहा है। ताप प्रदूषण के लिए ज्वालामुखी उद्गार तथा गहरे सागरीय गीजर जैसे प्राकृतिक घटनाएँ भी उत्तरदायी हैं। मार्च 2018 में हवाई द्वीप में हुए ज्वालामुखी विस्फोट के दौरान व्यापक स्तर पर जलीय व स्थलीय पारितंत्र क्षतिग्रस्त हुआ। इसी प्रकार प्राकृतिक गीजर जब अचानक उत्सुत होते हैं तो उनके आस-पास के जलीय पर पारितंत्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

इसी प्रकार ताप ऊर्जा संयंत्रों, औद्योगिक उपक्रमों आदि विभिन्न मानवीय गतिविधियों द्वारा भी बड़े पैमाने पर ताप प्रदूषण हो रहा है। इन सभी क्षेत्रों में प्रशीतक तथा क्लीनिंग के शीतल जल का उपयोग किया जा रहा है। इस प्रक्रिया से निकला गर्म जल नदियों तथा समुद्र आदि में प्रवाहित कर दिया जाता है। जिसके परिणामस्वरूप जलीय पारितंत्र बुरी तरह प्रभावित होता है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

8. भूमंडलीय ताप

भूमण्डलीय तापन अथवा वैश्विक ऊष्मन एवं जलवायु परिवर्तन एक-दूसरे से अन्तर्संबंधित हैं क्योंकि वैश्विक तापन का अंतिम परिणाम जलवायु में स्थानीय, प्रादेशिक एवं भूमण्डलीय स्तर पर भारी परिवर्तन के रूप में हो सकता है। जिसका प्रभाव न केवल मानव जीवन, अपितु समस्त पारितंत्र पर पड़ेगा।

वैश्विक ऊष्मन (Global Warming)

वैश्विक उष्णता पृथ्वी और समुद्र के वातावरण के औसत तापन में वृद्धि को कहते हैं। वैश्विक ऊष्मन के अंग्रेजी शब्द 'Global Warming' का सर्वप्रथम प्रयोग ब्रिटिश पर्यावरणविद् ब्रोएकर द्वारा 1970 के दशक में किया गया था। वैश्विक उष्णता औद्योगिक क्रांति से ग्रीन हाउस गैसों में वृद्धि के परिणामस्वरूप पृथ्वी के निचले वायुमण्डल के औसत तापमान में क्रमिक बढ़ोत्तरी है।

वैश्विक ऊष्मन के कारक

पिछले कुछ दशकों में पृथ्वी और इसके वायुमण्डल का तापमान लगातार बढ़ रहा है। जिसके मुख्य कारक पर्यावरण प्रदूषण के लिए उत्तरदायी ग्रीन हाउस गैसें तथा पर्यावरण प्रदूषण हैं।

वस्तुतः वैश्विक ऊष्मन के कारकों को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है:-

प्राकृतिक कारक

वैश्विक ऊष्मन एक प्राकृतिक परिघटना भी है, जो लाखों वर्षों से पृथ्वी पर होती रही है। प्राकृतिक कारकों द्वारा वैश्विक तापन तथा शीतलन अत्यन्त मंद गति से होता है और ऊष्मन एवं शीतलन की ये प्राकृतिक प्रक्रियाएँ उत्क्रमणीय होती हैं।

मानवीय कारक

आधुनिक युग में मानव कई ऐसी क्रियाएँ-प्रक्रियाएँ अपनाता चला गया, जिससे पर्यावरण तथा जलवायु के सम्मुख जटिल समस्याएँ उत्पन्न होती चली गयीं। स्मरणीय है कि मानव जनित भूमण्डलीय तापन तेजी से होता है तथा उत्क्रमणीय नहीं होता अर्थात् एक निश्चित सीमा प्राप्ति के पश्चात् वह दुबारा वापस नहीं होता है। मानव प्रेरित वैश्विक ऊष्मन से जलवायु में स्थानीय, प्रादेशिक तथा वैश्विक स्तर पर अल्पकालिक से लेकर दीर्घकालिक परिवर्तन हो सकते हैं।

वैश्विक ऊष्मन की प्रक्रिया

वैश्विक ऊष्मन तथा वैश्विक औसत तापमान में वृद्धि के प्रमुख स्रोतों, कारकों एवं प्रक्रियाओं का अध्ययन निम्नलिखित रूपों में किया जाता है:-

हरित गृह प्रभाव (Green House Effect)

सामान्य वायुमंडलीय प्रक्रिया यह है कि पृथ्वी के धरातल पर तापमान का अनुरक्षण, पृथ्वी पर आने वाली सूर्य किरणों की ऊर्जा और वहाँ से अंतरिक्ष में वापस जाने वाली ऊष्मा के ऊर्जा संतुलन द्वारा होता है। जब वायुमंडल में हरित गृह गैसों के संकेन्द्रण में वृद्धि होती है, तो वे अंतरिक्ष में विकसित होने वाली ऊर्जा को रोक कर अवशोषित कर लेती हैं, फलस्वरूप पृथ्वी के तापमान में वृद्धि होने लगती है। यही घटना हरित ग्रह प्रभाव कहलाती है।

दूसरे शब्दों में कहें, तो कार्बन डाइऑक्साइड के आवरण प्रभाव के कारण पृथ्वी की सतह के प्रगामी तापन को हरित गृह प्रभाव कहा जाता है।

लगभग ऐसी ही स्थिति पृथ्वी पर वायुमण्डलीय गैसों के आवरण के द्वारा उत्पन्न की जाती है। जलीय वाष्प, कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2), नाइट्रस ऑक्साइड (N_2O), मीथेन (CH_4) और ओजोन, पृथ्वी के वायुमण्डल में पाई जाने वाली प्राथमिक ग्रीनहाउस गैसें हैं। वायुमण्डल में पायी जाने वाली ये गैसें ताप अवशोषक गैसें हैं। सूर्य से आने वाली लघु तरंगीय सौर विकिरण इन गैसों के आवरण को पार करके पृथ्वी के धरातल तक पहुँचने में तो सफल होती है, परन्तु पृथ्वी के धरातल से वापस होने वाला दीर्घ तरंगीय पार्थिव विकिरण इन गैसों को पार करने में असमर्थ होता है अर्थात् पार्थिव विकिरण इन गैसों द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है। फलतः उनमें ऊष्मा संचित हो जाती है। इस प्रकार इन गैसों की मात्रा में होने वाली वृद्धि का सीधा परिणाम वायुमंडल में ऊष्मा के संग्रह में वृद्धि होता है।

इस प्रकार कार्बन डाइऑक्साइड आदि गैसों की मात्रा में वृद्धि और वैश्विक तापमान में वृद्धि के बीच सीधा संबंध होता है। इसीलिए इस घटना को वैश्विक ऊष्मन या हरित गृह प्रभाव कहते हैं। इसीलिए कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, क्लोरोफ्लोरो कार्बन, पर फ्लोरोकार्बन आदि गैसों को हरित गृह गैसें (Green House Gases) भी कहते हैं। स्मरणीय है कि हरितगृह प्रभाव (Green House) शब्द का प्रयोग सबसे पहले स्वीडन के रसायनशास्त्री स्वांते अगस्ट आरहीनियस ने 1896 ई. में किया था।

Downloaded From
www.studymasterofficial.com

हरित गृह गैसें (Green House Gases)

वायुमण्डल में विभिन्न ग्रीनहाउस गैसें प्राकृतिक रूप से उपस्थित होती हैं, परन्तु ये मानवीय क्रियाओं जैसे-जीवाश्म ईंधनों के दहन आदि से भी उत्पन्न होती हैं। ये ग्रीन हाउस गैसें वायुमण्डल के तापमान को बढ़ाने के लिए उत्तरदायी हैं।

इन गैसों का विस्तृत विवरण निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है:-

कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2)

हरित गृह प्रभाव की दृष्टि से यह बहुत महत्त्वपूर्ण गैस है। 1780 से पूर्व वायुमंडल में कार्बन-डाइऑक्साइड की मात्रा 0.0294 प्रतिशत अर्थात् 294ppm थी, जबकि 1860 से 1920 के बीच की अवधि में 13% की वृद्धि के साथ यह 334ppm हो गई। वर्तमान में जैव ईंधनों के प्रयोग में लगभग 4% की वृद्धि हो रही है। इस गति से सन् 2030 तक वायुमंडल में कार्बन-डाइ-ऑक्साइड की मात्रा दुगुनी होने की संभावना है।

मीथेन (CH_4)

मीथेन भी एक अत्यंत महत्वपूर्ण हरितगृह गैस है। यह कुल हरितगृह गैसों का लगभग एक-चौथाई भाग है। मीथेन की तापवृद्धि क्षमता 36 है। यह गैस कार्बन-डाइ-ऑक्साइड की तुलना में 20 गुना अधिक प्रभावी है। इसे सामान्यत: दलदली गैस (Marsh Gas) कहते हैं क्योंकि यह आर्द्रभूमि तथा दलदल में उत्पन्न होती है। यह जल में घुलनशील है और प्राकृतिक गैस की मुख्य घटक भी है। मीथेन न केवल स्थल पर, अपितु महासागरीय नितल के नीचे भी पायी जाती है। यह मानवीय क्रियाकलापों से भी पैदा होती है। वास्तव में विश्व की दो-तिहाई मीथेन मानवीय क्रियाओं से ही पैदा होती है। पिछले 100 वर्षों में वातावरण में मीथेन के सान्द्रण में दुगुनी वृद्धि हुई है।

नाइट्रस ऑक्साइड गैस (Nitrous Oxide)

नाइट्रस ऑक्साइड एक प्राकृतिक ग्रीनहाउस गैस है, जो कि मुख्य रूप से मृदा अवक्षयन द्वारा उत्सर्जित होती है। इसकी एक बड़ी मात्रा नाइट्रोजनीकृत उर्वरकों तथा वनों एवं कृषि अपशिष्ट के जलाने से भी पैदा होती है। वातावरण में नाइट्रस ऑक्साइड की मात्रा 0.3% वार्षिक दर से बढ़ रही है। मृदा में रासायनिक खादों पर सूक्ष्म-जीवों की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप नाइट्रस ऑक्साइड का निर्माण होता है। तत्पश्चात् यह गैस वातावरण में उत्सर्जित होती है। एक अनुमान के अनुसार, औद्योगिक क्रांति से पूर्व वातावरण में N2O का संकेन्द्रण 270 ppb (Parts Per Bilion) था, जो वर्तमान में बढ़कर लगभग 320 ppb हो गया है। नाइट्रस ऑक्साइड वातावरण को कार्बन डाइ-ऑक्साइड की तुलना में 270 गुना अधिक गर्म करने की क्षमता रखती है। इस गैस का वैश्विक तापमान वृद्धि में लगभग 6% योगदान है।

हरित गृह गैसों की वृद्धि के मुख्य कारण

यद्यपि हरितगृह गैसों की वृद्धि के लिए मानवीय तथा प्राकृतिक दोनों प्रक्रियाएँ उत्तरदायी हैं। फिर भी विगत दशकों में मानव जनित उत्प्रेरकों द्वारा हरित गृह गैसों के उत्सर्जन में तीव्रता आयी है।

हरित गृह गैसों के उत्प्रेरक कारकों को निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया जा सकता है:-

जैव ईंधनों का प्रयोग

विभिन्न औद्योगिक गतिविधियों, यातायात के साधनों तथा घरेलू उपयोग हेतु वृहद् पैमाने पर जीवाश्म ईंधनों का दहन किया जाना, जिससे बड़ी मात्रा में कार्बन-डाइ-ऑक्साइड आदि गैसें उत्सर्जित होती हैं। एक अनुमान के अनुसार, वर्ष 2018 में वायुमंडल के भीतर CO_2 का स्तर लगभग 410 ppm तक पहुँच गया था।

वनोन्मूल

औद्योगिक तथा नगरीकरण की प्रक्रिया के चलते स्थापनाओं के विकास हेतु बड़े पैमाने पर वनों को काटा गया। इसके साथ ही कृषि क्षेत्र के विस्तार हेतु वन क्षेत्रों का विनाश किया गया।

भूमण्डलीय तापन का प्रभाव

वैश्विक तापन के कारण वायुमंडल में ऊष्मा का अधिक संकेन्द्रण हो सकता है, जिससे वातावरण के तापमान में वृद्धि हो सकती है।

इसके फलस्वरूप निम्नलिखित परिघटनाएँ परिलक्षित हो सकती हैं-

- वाष्पीकरण की मात्रा में वृद्धि।
- चक्रवातों की बारंबारता में वृद्धि।
- एलनीनो की बारंबारता एवं तीक्ष्णता में वृद्धि।
- दोनों गोलार्द्धों में ग्रीष्म ऋतु की तीक्ष्णता में वृद्धि।
- वर्षा की मात्रा तथा समयावधि में असंतुलन।
- जैव चक्र में व्यवधान।

स्थलमंडल पर प्रभाव

- स्थलीय शुष्कता में वृद्धि।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

जलमण्डल पर प्रभाव

- ग्लेशियरों के तीव्र पिघलाव के फलस्वरूप समुद्री जल स्तर में वृद्धि।
- समुद्री जलस्तर में वृद्धि से एक बड़ी जनसंख्या के सम्मुख पलायन की समस्या।
- छोटे द्वीपीय देशों के डूबने का संकट।
- प्रवालों का विनाश।

तटीय पर्यटन पर कुप्रभाव

- मत्स्यन से जुड़े उद्योगों व लोगों के सम्मुख रोजगार की समस्या आदि।

कृषि उत्पादन पर प्रभाव

- तापमान में वृद्धि से जलवायविक क्रियाविधियों में डिस्टर्बेंस देखी जा सकती है। मौसम संबंधी समयावधि में बदलाव महसूस किया जा रहा है। ऐसे में विभिन्न मौसमों के अनुकूल फसल प्रारूप पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।
- वैश्विक ऊष्मन के फलस्वरूप मरुस्थलीकरण में वृद्धि के चलते कृषि योग्य भूमि में कमी आएगी। अतः खाद्यान्न संकट उत्पन्न हो सकता है।

जीव-जन्तुओं तथा वनस्पतियों पर प्रभाव

- यदि वायुमण्डल 2ºC से 5ºC तक गर्म हो जाता है, तो धरातल विशेषरूप से शीतोष्ण वन तथा वर्षा वन के पारितंत्र पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा।
- अनेक जीव-जन्तुओं की प्रजातियाँ विलुप्त हो सकती हैं या उनका प्रवासन होगा।
- जलस्रोतों के सूखने से भी बहुत से वन्यजीव संकट में पड़ सकते हैं।

GS WORLD Committed to Excellence
Downloaded From www.studymasterofficial.com

9. जलवायु परिवर्तन

जलवायविक दशाओं में होने वाले दीर्घकालिक उतार-चढ़ावों को वैश्विक स्तर पर जलवायु परिवर्तन की संज्ञा दी जाती है। वर्तमान में जलवायविक परिवर्तन के फलस्वरूप अनेक मौसमी विपथगन (उथल-पुथल) को महसूस किया जा रहा है, जिनमें चरम उच्च तापमान, चरम ठंड अथवा विस्तारित शीतकाल एवं ग्रीष्मकाल, चक्रवातों की बारंबारता में वृद्धि, उच्च वर्षा आदि घटनाएँ शामिल हैं। ये या तो प्राकृतिक कारणों से पृथ्वी द्वारा सूर्य से प्राप्त विकिरण में परिवर्तन से या मानवीय क्रिया-कलापों से उत्पन्न होने वाली हरित गृह गैसों में वृद्धि से होती हैं।

जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन (UNFCCC) के अनुसार, "जलवायु परिवर्तन लम्बी अवधि के संदर्भ में मानवीय क्रियाकलापों का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष परिणाम है, जो वायुमंडल की संरचना को परिवर्तित करता है और यह प्राकृतिक कारणों के अतिरिक्त है।"

पृथ्वी का औसत तापमान अभी लगभग 150oC है। हालांकि, भूगर्भिक प्रमाण बताते हैं कि पूर्व में पृथ्वी का तापमान बहुत अधिक या बहुत कम रहा है, लेकिन पिछले कुछ वर्षों में अचानक तेजी से बदलाव हो रहा है। मौसम की अपनी विशेषताएँ होती हैं, लेकिन अब इसका ढंग (पैटर्न) बदल रहा है। गर्मियाँ लंबी होती जा रही हैं और सर्दियाँ छोटी। ऐसा संपूर्ण विश्व में हो रहा है।

जब जलवायु परिवर्तन की चर्चा होती है, तो अधिकांश लोग वैश्विक तापन (Global Warming) के बारे में सोचते हैं। इसी प्रकार, जब ग्लोबल वार्मिंग के विषय में चर्चा होती है तो हममें से अधिकतर ग्रीन हाउस प्रभाव के बारे में सोचते हैं। वास्तव में ग्रीन हाउस प्रभाव एक प्रकृति है, जो मानव गतिविधियों से भी प्रभावित होती है।

जलवायु परिवर्तन को लेकर पर्यावरणविदों तथा वैज्ञानिकों में इस विषय को लेकर गतिरोध है कि पृथ्वी किस दर से गर्म हो रही है तथा भविष्य में कितना अधिक गर्म हो सकती है। किन्तु इस तथ्य को लेकर सहमति है कि वास्तव में पृथ्वी गर्म हो रही है।

जलवायु परिवर्तन के कारण

पृथ्वी के उद्‌भव काल से देखें, तो ज्ञात होता है कि जलवायु परिवर्तन एक प्राकृतिक तथा सतत् प्रक्रिया है। प्रारंभ में पृथ्वी की जलवायु अत्यंत गर्म थी। कालांतर में यह हिम युग में परिवर्तित हो गयी। अतीत में ऐसे परिवर्तन होने में लंबा समय लगा, परन्तु वर्तमान में परिवर्तनों की दर अत्यंत तीव्र है और परिवर्तनों के लिए प्राकृतिक तथा मानवीय दोनों कारकों की भूमिका है।

जलवायु परिवर्तन को प्रभावित करने वाले कारकों को खगोलीय और पार्थिव कारकों में भी वर्गीकृत किया जाता है जिन्हें हम निम्नलिखित रूपों में देख सकते हैं-

प्राकृतिक कारक

पृथ्वी की जलवायु, जलवायु तंत्र के बाहर के विभिन्न प्राकृतिक कारकों: यथा-सौर निर्गत (Solar Output), सूर्य के सापेक्ष पृथ्वी की कक्षा का झुकाव और ज्वालामुखी गतिविधियों आदि द्वारा प्रभावित हो सकती है। यहाँ खगोलीय कारकों का संबंध सौर कलंकों की गतिविधियों से उत्पन्न सौर्यिक निर्गत ऊर्जा परिवर्तन से है। सौर कलंक सूर्य पर काले धब्बे होते हैं, जो एक चक्रीय ढंग से घटते-बढ़ते रहते हैं। कुछ मौसम वैज्ञानिकों के अनुसार, सौर कलंकों की संख्या बढ़ने पर मौसम ठंडा और आर्द्र हो जाता है और तूफानों की संख्या बढ़ जाती है। सौर कलंकों की संख्या घटने से उष्ण एवं शुष्क दशाएँ उत्पन्न होती हैं। यद्यपि ये खोजें आंकड़ों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं है।

एक अन्य खगोलीय सिद्धांत 'मिलैंकोविच दोलन' है, जो सूर्य के चारों ओर पृथ्वी के कक्षीय लक्षणों में बदलाव के चक्रों, पृथ्वी के झुकाव में परिवर्तनों के बारे में अनुमान लगाता है। ये सभी कारक सर्य से प्राप्त होने वाले सूर्यातप में परिवर्तन ला देते हैं, जिसका जलवायु पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

ज्वालामुखी उद्‌गार जलवायु परिवर्तन का एक अन्य प्राकृतिक कारक है। ज्वालामुखी उद्‌भेदन वायुमंडल में बड़ी मात्रा में एयरोसोल फेंक देता है। ये एयरोसोल लम्बे समय तक वायुमंडल में विद्यमान रहते हैं और पृथ्वी की सतह पर पहुँचने वाले सौर्यिक विकिरण को कम कर देते हैं। हालांकि, ज्वालामुखी विस्फोट का जलवायु परिवर्तन पर अपेक्षाकृत अल्पकालिक प्रभाव होता है।

वायुमंडल के गैसीय संयोजन में असंतुलन अथवा परिवर्तन जलवायु परिवर्तन के प्रमुख कारणों में से एक है। वायुमंडल में उपस्थित कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड तथा जलवाष्प आदि अधिकांशतः प्राकृतिक क्रियाकलापों द्वारा निर्मित होते हैं। इनमें किसी भी प्रकार का असंतुलन जलवायविक परिवर्तनों को उत्प्रेरित करता है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

मानवीय कारण

एक समय सभी जलवायवीय परिवर्तन प्राकृतिक कारणों द्वारा उत्प्रेरित थे, परन्तु औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप नगरीकरण, औद्योगीकरण तथा भूमि उपयोग में परिवर्तन जैसी अनेक क्रियाओं ने जलवायु परिवर्तन के लिए उत्तरदायी तत्वों को बढ़ावा दिया। औद्योगिक गतिविधियों तथा आधुनिक उपभोक्तावादी जीवन पद्धति ने मानव जनित ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में वृद्धि की। ग्रीन हाउस गैसों के स्तर में वृद्धि पृथ्वी के तापमान में तेजी से वृद्धि करती है और ग्लोबल वार्मिंग का कारण बनती है। पिछली सदी के दौरान पृथ्वी के तापमान में 0.8^0C की वृद्धि दर्ज की गयी। तीव्र गति से घटते वनावरण ने स्थिति को और भी गंभीर बना दिया है क्योंकि वन ग्रीन हाउस गैसों, विशेषकर कार्बनडाइऑक्साइड को अवशोषित कर लेते हैं, परन्तु इनकी अंधाधुंध कटाई ने संतुलन की नियमित श्रृंखला को भंग करने का कार्य किया है।

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव

वर्तमान वैश्विक परिवेश में जलवायु परिवर्तन एक गंभीर समस्या बनकर उभरा है। यद्यपि जलवायु परिवर्तन के अंतर्गत तापमान में परिवर्तन (तापमान में वृद्धि अथवा कमी) वायुमंडलीय दाब, वायुमंडल में आर्द्रता, वर्षा की मात्रा तथा चक्रवात जैसी अन्य घटनाओं का समावेश होता है, तथापि तापमान में वृद्धि सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण तत्व है। फिर भी जलवायु परिवर्तन से पड़ने वाले प्रभावों को निम्नलिखित रूप में देख सकते हैं-

- **हिम का पिघलना तथा हिम चादरों का सिकुड़ना**
- **समुद्री तल का ऊपर उठना**
- **प्राकृतिक आपदाओं में वृद्धि**
- **जलवायु परिवर्तन का वनों पर प्रभाव**
- **खाद्यान्न संकट**
- **जैव विविधता का ह्रास**

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS WORLD Committed to Excellence

10. जलवायु परिवर्तन के लिए अंतर्राष्ट्रीय प्रयास

जलवायु परिवर्तन के लिए अंतर सहकारी पैनल IPCC

लगभग 20वीं सदी के आस-पास हुए औद्योगीकरण के कारण हरित गृह गैसों का प्रभाव अत्यधिक हो गया। जिसके तहत मानवीय क्रियाओं के द्वारा जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्र महासभा द्वारा हुए ब्रंटलैंड कमीशन (जलवायु परिवर्तन से संबंधित) की रिपोर्ट पर पुनः बैठक की आवश्यकता महसूस हुई। बढ़ती हुई जलवायु परिवर्तन की समस्या के समाधान हेतु सन् 1988 में विश्व मौसम विज्ञान संगठन (World Meteoroligical Organization) तथा संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (United Nation Environment Progormme) के द्वारा PCC (Panel on Climate Change) की स्थापना की गई। यह सदैव संयुक्त राष्ट्र (UN) एवं विश्व मौसम विज्ञान संगठन (WMO) के सदस्यों के लिए कार्यरत है। इसके द्वारा जलवायु की स्थिति का अध्ययन किया जाता है तथा उस पर रिपोर्ट तैयार की जाती है तथा यह अलग-अलग मॉडलों के भविष्यवाणी पर आधारित है तथा विभिन्न समूहों पर संयुक्त रूप से कार्यरत है इसके अंतर्गत जलवायु परिवर्तन विज्ञान प्रभाव, अनुकूलन एवं भेद्यता, जलवायु परिवर्तन विज्ञान, उपशमन आदि कार्यरत है।

IPCC की रिपोर्ट

जलवायु परिवर्तन पर पहली मूल्यांकन रिपोर्ट 1990 में तैयार की गई थी जिसे संयुक्त राष्ट्र की सामान्य सभा (UN-General Assembly) द्वारा UNFCCC के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भूमिका निभाई इसरो रिपोर्ट 1995, तीसरी 2001 तथा चौथी रिपोर्ट 2004 में तैयार की गई। IPCC की अंतिम रिपोर्ट वर्ष 2018 में तैयार थी गई है जिसके प्रमुख निष्कर्ष हैं:-

वैश्विक तापमान की वर्तमान स्थिति मानव-जनित ग्लोबल वार्मिंग 2017 में ही पूर्व औद्योगिक स्तर पर 1 डिग्री सेल्सियस के ऊपर तक पहुँच गई थी। अलग-अलग देशों में जलवायु परिवर्तन से वर्तमान प्रयासों को देखते हुए 2030 से 2052 के मध्य तापन का 1.5 डिग्री सेल्सियस ऊपर तक जाने की संभावना है।

वर्ष 2000 के बाद से ही मानव जनित तापन का अनुमानित स्तर ऐतिहासिक काल में घटित सौर एवं अन्य प्राकृतिक आपदाओं (ज्वालामुखी) के योगदान के कारण उत्पन्न हुए तापन के अनुमानित स्तर के समान हो चुका है।

1.5 डिग्री सेल्सियस वृद्धि पर ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव का बहुत ही नकारात्मक परिणाम हो सकता है। समुद्र स्तरों में वृद्धि के साथ वर्षा की मात्रा में वृद्धि होगी तथा सूखे तथा बाढ़ की बारम्बारता अधिक हो सकती है। जिसके साथ-साथ उष्णकटिबंधीय चक्रवातों की तीव्रता में वृद्धि होगी तथा महासागरों में अम्लीकरण का प्रभाव अत्यधिक होगा जिसकी वजह से समुद्री परितंत्र नष्ट हो सकता है।

- **स्पेशल क्लाइमेट चेंज फंड (Special Climate Change Fund):-** इसकी स्थापना वर्ष 2001 में मराकेश में कोप-7 की देख-रेख में अनुक्रिया स्वरूप की गई थी। यह लीस्ट डेवलप्ड कंट्रीज फंड (LDCF) का पूरक है तथा यह (LDCF) के विपरीत सभी विकासशील देशों में कार्यरत है।
- **एडाप्टेशन फंड (AF):-** इसकी स्थापना वर्ष 2001 में की गई थी। इसका उद्देश्य क्योटो प्रोटोकॉल के पक्षकार विकासशील देश जो जलवायु परिवर्तन हेतु कार्यरत हेतु वित्तीय सहायता प्रदान करना है। इसका वित्तीय पोषण क्लीन डेवलपमेंट मैकेनिज्म (CDM) परियोजना गतिविधियों से प्राप्त आय के हिस्से एवं वित्त पोषण के अन्य स्रोतों से किया जाता है।
- **ग्रीन क्लाइमेट फंड (Green Climate Fund):-** इसकी स्थापना कोप-16 के अंतर्गत किया गया जो कानकुन (मैक्सिको) में आयोजित किया गया था। इसके माध्यम से अनुकूलन एवं शमन क्रियाकलापों हेतु विकासशील देशों की सहायता प्रदान की जाती है तथा विश्व बैंक के अंतर्गत कार्यरत है।

हॉट हाउस (Hot House)

यह एक ऐसा निकाय है जिसमें किसी गृह द्वारा उस उच्चतम बिन्दु को पार कर लिया जाता है जिसके आगे की उसकी स्वयं की प्राकृतिक प्रक्रियाएँ अनियंत्रित उष्मन (तापन) को उत्सर्जित करती रहती है।

जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमर्वक कन्वेंशन (United Nationas Frame Work Communication on Climate Change: UNFCCC)

औसत वैश्विक तापमान वृद्धि को सीमित करके जलवायु जलवायु परिवर्तन से निपटने हेतु वर्ष 1992 में विभिन्न देशों द्वारा UNFCCC को अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के एक फ्रेमवर्क के रूप में अपनाया। इस पर पहली रिपोर्ट 1992 में तैयार की गई। जिसे संयुक्त राष्ट्र के कार्यक्रम का आधार प्रदान किया। साथ ही, इस रिपोर्ट के साथ विश्व के सभी देशों ने UNFCCC पर सहमति स्थापित किया।

Downloaded From www.studymasterofficial.com

वर्ष 1992 के 'रियो पृथ्वी शिखर सम्मेलन' में अपनाए गये तीन प्रमुख अभिसमयों में से एक है तथा अन्य दो-कंवेंशन टू कॉम्बैट डिजर्टिफिकेशन तथा यूनाइटेड नेशन कंवेंशन ऑन बायोलॉजिकल डाइवर्सिटी है, जो कि पर्यावरण वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के अंतर्गत कार्यरत है।

UNCCD 2019

मरुस्थलीकरण और संयुक्त राष्ट्र का कॉप-14

मरुस्थलीकरण जमीन के अनुपजाऊ हो जाने की ऐसी प्रक्रिया है जिसमें जलवायु परिवर्तन तथा मानवीय गतिविधियों समेत अन्य कई कारणों से शुष्क, अर्द्ध-शुष्क और निर्जल, अर्ध-नम इलाकों की जमीन रेगिस्तान में बदल जाती है। इससे जमीन की उत्पादन क्षमता में कमी और ह्रास होता है। एशियाई देशों में मरुस्थलीकरण पर्यावरण संबंधी एक प्रमुख समस्या है। भारत में निर्जल भूमि के अंतर्गत गर्म जलवायु वाले शुष्क, अर्द्ध-शुष्क और अर्द्ध-नम क्षेत्र शामिल हैं। सरल शब्दों में समझें तो मरुस्थलीकरण एक तरह से भूमि क्षरण का वह प्रकार है, जब शुष्क भूमि क्षेत्र निरंतर बंजर होता है और नम भूमि भी कम हो जाती है। साथ ही साथ, वन्यजीव और वनस्पति भी खत्म होती जाती है। इसकी कई वजह होती है, इसमें जलवायु परिवर्तन और इंसानी गतिविधियां प्रमुख हैं। इसे रेगिस्तान भी कहा जाता है और दुनिया का 23 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्र मरुस्थलीकरण की चपेट में आ चुका है। भारत की कुल जमीन का लगभग 30 प्रतिशत हिस्सा मरुस्थल बन चुका है।

विश्व भर में तेजी से मरुस्थलीकरण होने का कारण माना जा रहा है कि वर्ष 2050 तक मरुस्थलीकरण के कारण विश्व की करीब 70 करोड़ की आबादी को पलायन के लिए मजबूर होना पड़ेगा। मरुस्थलीकरण के कारण न केवल मानवीय जीवन पर प्रभाव पड़ रहा है, बल्कि वन्यजीवों पर भी इससे संकट के बादल मंडरा रहे हैं और उनका जीवन प्रभावित हो रहा है।

जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क (यूएनएफसीसीसी)

जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क (यूएनएफसीसीसी) एक अंतर्राष्ट्रीय समझौता है। इसका मुख्य उद्देश्य वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को नियंत्रित करना है। यह समझौता जून 1992 के पृथ्वी सम्मेलन के दौरान किया गया था। इस समझौते पर विभिन्न देशों द्वारा हस्ताक्षर के बाद 21 मार्च 1994 को इसे लागू किया गया था। यूएनएफसीसीसी की वार्षिक बैठक का आयोजन वर्ष 1995 से लगातार किया जा रहा है। यूएनएफसीसीसी की वार्षिक बैठक को कॉन्फ्रेंस ऑफ द पार्टीज (कॉप) के नाम से भी जाना जाता है।

UNFCCC के अंतर्गत कार्यरत तीन प्रमुख निधियाँ निम्नलिखित हैं-

कोप (Cop - Confrence of the Parties)

जलवायु परिवर्तन रिपोर्ट पर अंतर सरकारी पैनल की रिपोर्ट प्राप्त होने के पश्चात् ग्रीन हाउस गैस की समस्या अत्यधिक चिंता का विषय था अत: इसे नियंत्रण करने हेतु कई देशों की सरकार, सहकारी विभाग एवं प्राइवेट पार्टियों ने सहमति जताई थी तथा ग्रीन हाऊस गैस के नियंत्रण हेतु वर्ष 1992 में आयोजित Earth Summit का आयोजन हुआ तथा कोप पर सहमति जताई गई।

- **केटावाइस- 2018 (कोप-24):-** यूनाइटेड नेशन फ्रेमवर्क कन्वेंशन ऑन क्लाइमेट चेंज (UNFCCC) के कॉफ्रेंस ऑफ पार्टीज के 24वें सत्र (Cop-24) का आयोजन पोलैंड के केटावाइस में किया गया है। सभी देशों द्वारा IPCC के अंतर्गत नवीनतम उत्सर्जन लेखकांक मार्ग दर्शन का उपभोग किया जायेगा आने वाले विगत वर्षों में इसमें सुधार की संभावनाएँ बढ़ सकती है इसके अंतर्गत कार्बन क्रेडिट के व्यापार की सुविधा के साथ-साथ बिक्री के लिए कार्बन क्रेडिट का निर्माण एवं व्यक्तिगत परियोजनाओं के लक्ष्यों की प्राप्ति पर सहमति जताई गई है।

इसकी स्थापना दिसंबर, 2014 में पेरू की राजधानी लीमा में की गई। हरितगृह गैसों को कम करने और तापमान में वृद्धि को 2¿C तक सीमित करने के उद्देश्य से आयोजित हुआ। क्योटो प्रोटोकॉल की तरह लीमा सम्मेलन का प्रभाव भी कालान्तर में कम हो गया। रूस, ऑस्ट्रेलिया और कनाडा जैसे देशों द्वारा महसूस किया गया कि क्योटो प्रोटोकॉल के विकासशील देशों को अधिक आर्थिक एवं तकनीकी सहायता प्रदान करने हेतु अनुबन्ध अब प्रभावहीन हो चुके है।

लीमा सम्मेलन में विकसित देशों द्वारा उत्सर्जित ग्रीन हाउस गैसों का भी आकलन किया गया है जिसकी वजह से विकासशील देशों को होने वाली क्षति पूर्ति के लिए आर्थिक सहायता उपलब्ध कराने पर विचार विमर्श किया गया।

- **वारसा- 2013 (कोप- 19):-** कोप- 19 का सम्मेलन नवंबर, 2013 में पोलैंड के वारसा में आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में भविष्य में होने वाली बैठकों के संबंध में चर्चा की गई थी तथा साथ ही साथ पेरू में आयोजित होने वाले कोप- 20 की रूपरेखा को निश्चित करने का प्रयास किया गया। भारत ने भी इस सम्मेलन में भाग लिया तथा विकासशील देशों को आर्थिक एवं तकनीकी सहायता प्रदान करने की मांग की गई तथा भविष्य में होने वाली जलवायु परिवर्तन को लेकर निम्नवत् सहमति स्थापित की गई।

  – सभी देशों द्वारा भविष्य में 2015 तक, तापमान वृद्धि को 2° से नीचे रखने का प्रयास करेंगे।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
World Committed to Excellence

– दोहा (2012) में आयोजित सम्मेलन में निश्चित किया गया कि जलवायु परिवर्तन से होने वाली क्षति के लिए नई आर्थिक नीति को विकसित किया जाए।

– REDD के अंतर्गत कार्यरत जलवायु परिवर्तन से पीड़ित देशों को आर्थिक सहायता सुनिश्चित की जाए।

इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य विगत वर्षों में कार्बन डाइ ऑक्साइड से पीड़ित देशों के वनों की सुरक्षा के लिए आर्थिक सहायता हेतु REDD के लिए ब्रिटिश वित्तीय समाधान करना।

- **दोहा- 2012 (कोप-18):-** इस सम्मेलन का आयोजन दिसंबर, 2012 दोहा (सऊदी अरब) में किया गया। इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य विगत् तीन वर्षों में आयोजित सम्मेलनों के लाभों को एकत्रित करके भविष्य के लिए नई कार्यप्रणाली का आयोजन किया जाए इसके अंतर्गत मुख्य निर्णय इस प्रकार से है:-

  – अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर 2015 तक होने वाले सभी जलवायु परिवर्तन की समय सारणी तैयार करना तथा आने वाले वर्ष 2020 तक इसे लागू करना।

  – हरित गृह गैसों के उत्सर्जन को करने के लिए तथा सुभेद्य देशों की सहायता हेतु आवश्यकता पर बल दिया गया।

  – क्योटो प्रोटोकॉल के अंतर्गत नई-नई तकनीकों को विकसित करने हेतु (जो जलवायु परिवर्तन को कम करने में सहायक हो) निर्णय लिया गया तथा अमीर देशों द्वारा उत्सर्जित हरित गृह गैसों को कम करने का प्रावधान स्थापित किया गया।

  – सम्मेलन के दस्तावेजों में पहली बार क्षति के लिए उपर्युक्त भाषा को निरूपित किया गया।

- **डरबन- 2011 (कोप-17):-** डरबन (कोप-17) का उद्देश्य कानकुन सम्मेलन की त्रुटियों को दूर करने के लिए किया गया था। लेकिन विभिन्न देशों से एकत्रित हुए राष्ट्राध्यक्षों द्वारा जलवायु परिवर्तन की समस्या के समाधान हेतु वैश्विक समझौते में आपसी मतभेद के कारण इस सम्मेलन का असर फीका रह गया। अत: इसके कुछ निर्णय पर ध्यान दिया गया है:-

  – क्योटो प्रोटोकॉल के आगामी अवधि के लिए समझौता।

  – भारत की सतत् पोषणीय विकास के लिए एक समान पहुँच संबंधी मांग मान ली गई।

  – इसके साथ अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ग्रीन क्लाइमेट फंड की स्थापना की गई परन्तु वित्तीय व्यवस्था के प्रावधान की कोई व्याख्या नहीं हो सकी।

- **कानकुन- 2010 (कोप-16):-** इस सम्मेलन का मुख्य फोकस ग्रीन क्लाइमेट फंड की रूप रेखा के साथ वनों के विनाश को कम करना तथा जलवायु परिवर्तन को कम करने में सहायक प्रौद्योगिकी को विकसित करना एवं उनका स्थानान्तरण करना। इस सम्मेलन का आयोजन मैक्सिको के कानकुन में नवंबर, 2010 में हुआ। इस सम्मेलन में विपरीत दिशाओं में वार्ताएं होती रही तथा विकसित एवं विकासशील देशों में मतभेद को कम करने में सहायता मिली। विकसित देशों को तकनीक एवं आर्थिक सहायता के साथ विकासशील देशों पर उत्सर्जन कम करने के लिए मजबूर किया गया। जलवायु परिवर्तन के एक अंतर सरकारी पैनल (IPCC) रिपोर्ट के अनुसार, औद्योगिक क्रांति से हरित गृह गैसों में काफी वृद्धि दर्ज की गई है और वर्ष 1970-2004 के बीच लगभग 70% है इस सम्मेलन में यह सुनिश्चित किया गया कि विकास की पोषणीय नीति के अनुसार हुई हरित गृह गैसों की वृद्धि का अल्पीकरण किया जा सकता है।

कानकुन सम्मेलन में चर्चा का मुख्य विषय विश्व के औसत तापमान में 2oC से कम तथा औद्योगिक क्रान्ति के बाद की अवधि में 1.5oC से कम वृद्धि करने का लक्ष्य था। तथा इसके साथ 90 देशों द्वारा जलवायु परिवर्तन को कम करने हेतु गृह गैसों के उत्सर्जन पर कमी लाने की सहमति दर्ज की गई।

- **क्योटो सम्मेलन में:-** इसमें भाग लेने वाले देशों ने यह महसूस किया कि वैश्विक उष्णता एक कटु सत्य है और इसका मुख्य कारण मानव द्वारा जनित कार्बन डाइ-ऑक्साइड में निरंतर वृद्धि है। इसे क्योटो (जापान) में 1997 में आयोजित किया गया परन्तु यह 2005 में ही कार्यान्वित हो सका। इस लम्बे विलम्ब का मुख्य कारण यह था कि कम-से-कम 55 देशों द्वारा इसे अनुसमर्थन (Ratification) किया जाना था। 2005 तक इस पर 169 देशों ने हस्ताक्षर कर दिए थे। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा ऑस्ट्रेलिया ने दिसम्बर 2007 तक इसका अनुसमर्थन करने से इन्कार किया था।

इसमें लिए गए निर्णय के अनुसार विश्व का तापमान बढ़ाने वाली छह गैसों कार्बन डाइ-ऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, हाइड्रोफ्लोरों कार्बन पर फ्लोरों कार्बन (Pre Fluorocarbons) तथा सल्फर हेक्साफ्लोराइड

Downloaded From www.studymasterofficial.com

(Sulfur Hexafluoride) के उत्सर्जन को कम करने के ध्येय को अनिवार्य किया गया। विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों को तकनीकी एवं आर्थिक सहायता देने की भी बात कही गई है।

अधिकांश औद्योगिक देशों के लिए उत्सर्जन की सीमा को 1990 के स्तर से कम करना अनिवार्य है। यद्यपि कुछ देशों को 1990 के स्तर से 10% अधिक उत्सर्जन करने की छूट होगी। सामान्यत: विकासशील देशों के लिए उत्सर्जन में कमी करना अनिवार्य नहीं है परन्तु भविष्य में उन्हें उत्सर्जन को कम करने के लिए कहा जाएगा।

दोष:-

- विश्व में अधिक उत्सर्जन करने वाले कुछ देशों के लिए उत्सर्जन को कम करना अनिवार्य नहीं है।
- संयुक्त राज्य अमेरिका की गणना विश्व के सबसे बड़े उत्सर्जक देशों में की जाती है। इस देश ने इस प्रोटोकॉल का अनुसमर्थन नहीं किया है।
- चीन, भारत, ब्राजील, दक्षिण अफ्रीका, इण्डोनेशिया, दक्षिण कोरिया आदि विश्व की कुछ बड़ी एवं तेजी से बढ़ने वाली अर्थव्यवस्था वाले देशों ने प्रोटोकॉल में निश्चित किए गए लक्ष्य को नहीं माना।
- यह प्रोटोकॉल 180 देशों द्वारा अनुसमर्थन के बाद ही लागू हुआ। इससे इसकी वैधता पर प्रश्न चिन्ह लगता है।

जलवायु परिवर्तन से संबंधित प्रमुख 'कोप' सम्मेलन

सम्मेलन	स्थान (देश)	वर्ष	उद्देश्य
कोप-1	बर्लिन (जर्मनी)	1995	– बर्लिन प्रारूप की मान्यता।
कोप-2	जिनेवा (स्विट्जरलैंड)	1996	– जिनेवा मंत्रिमंडलीय की अवधारणा।
कोप-3	क्योटो (जापान)	1997	– क्योटो प्रोटोकॉल की उत्पत्ति विकसित देशों द्वारा हरित गृह गैस उत्सर्जन के प्रावधान।
कोप-4	ब्यूनस आयर्स (अर्जेन्टीना)	1998	– ब्यूनस आयर्स एक्शन प्लान का संगठन।
कोप-5	बान (जर्मनी)	1999	– कोप-6 तक विकास की अवधारणा तय हुई।
कोप-6	हेग (नीदरलैंड)	2000	– विकास एवं निर्णय के लिए असफल वार्ता।
कोप-7	मर्राकेश (मोरक्को)	2001	– कोप-6 अनिर्णित विषय पर निर्णय।
कोप-8	नई दिल्ली	2002	– दिल्ली मंत्रिमंडलीय उद्घोषणा का प्रारूप विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों को तकनीकी एवं आर्थिक मदद् रूस द्वारा जताई गई आपत्ति।
कोप-9	मिलान (इटली)	2003	– गोद लेने हेतु फंड (Adoption Fund) का लाभ लेने वाले देशों द्वारा सहमति।
कोप-10	ब्यूनस आयर्स (अर्जेन्टीना)	2004	– ब्यूनस आयर्स एक्शन प्लान अपनाया गया।
कोप-11	मांट्रियल (कनाडा)	2005	– 2012 के बाद क्योटो प्रोटोकॉल की सीमा में वृद्धि। – GHG के उत्सर्जन में कटौती की वार्ता।
कोप-12	नैरोबी (केन्या)	2006	– जलवायु पर्यटन की पहली अवधारणा प्रस्तुत की।
कोप-13	बाली (इंडोनेशिया)	2007	– आगामी सम्मेलन की रूपरेखा 2012 के बाद होने वाले सम्मेलन का समयानुसार विचार विमर्श।
कोप-14	पोजनान (पोलैंड)	2008	– अमेरिकी राष्ट्रपति द्वारा होनो लुलु (हवाई) जलवायु परिवर्तन की दूसरे चरण की वार्ता। ऑस्ट्रेलिया द्वारा क्योटो प्रोटोकॉल पर अपनी नीति परिवर्तन।

Downloaded From www.studymasterofficial.com

सम्मेलन	स्थान (देश)	वर्ष	उद्देश्य
कोप-15	कोपेन हेग (डेनमार्क)	2009	– क्योटो प्रोट्रोकॉल के उत्तराधिकारी समझौते को 2012 के बाद अंतिम रूप देना।
कोप-16	कानकुन (मैक्सिको)	2010	– ग्रीन क्लाइमेट फंड का प्रारूप वनों के क्षति हेतु प्रावधान।
कोप-17	डरबन (दक्षिण अफ्रीका)	2011	– क्योटो प्रोटोकॉल का द्वितीय चरण पर सहमति। – भारत द्वारा सतत् पोषणीय विकास के लिए एवं समान पहुँच संबंधी मांग।
कोप-18	दोहा (सऊदी अरब)	2012	– 2020 तक क्योटो प्रोटोकॉल की सीमा में वृद्धि।
			– COP-3 के तहत भारत एवं ब्राजील द्वारा उत्सर्जन संबंधी कोई पाबंदी नहीं। क्षति संबंधी मामलों में उपर्युक्त भाषण का प्रावधान शामिल किया गया। – ग्रीन क्लाइमेट फंड की उन्नति।
कोप-19	वारसा (पोलैंड)	2013	– वैश्विक तापन वृद्धि को 2015 तक 2°C के नीचे रखने की सीमा तय करना। – REDD के अंतर्गत संकटग्रस्त विकासशील देशों को आर्थिक सहायता।
कोप-20	लीमा (पेरू)	2014	– ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी। – तापन में वृद्धि को 2°C तक सीमित रखना।
कोप-21	पेरिस (फ्रांस)	2015	– कई राष्ट्राध्यक्षों द्वारा विश्वव्यापी कार्यक्रम पर सहमति तथा आगामी 2020 तक लागू करने की नीति।
कोप-22	मर्राकेश (मोरक्को)	2016	– जलवायु परिवर्तन पर नियंत्रण हेतु योजना। – खाद्य एवं कृषि संगठन द्वारा सहायता प्राप्त। – 2000 लोगों का कार्यक्रम में भागीदारी।
कोप-23	बॉन (जर्मनी)	2017	– पर्यावरण संबंधी समस्याओं का निवारण। – कोप-21 समझौते में उन्नति का प्रावधान।
कोप-24	केटोवाइस (पोलैंड)	2018	– IPCC के नवीनतम उत्सर्जन लेखांकन मार्गदर्शन का उपयोग। – जलवायु संबंधी प्रतिबद्धताओं की तुलना करने एवं उन्हें वैश्विक समुच्चय में जोड़ने हेतु लेखांकन मार्गदर्शन नियम का प्रयोग। – तालानोआ वार्ता के परिणामों पर विचार करने के लिए आमंत्रित किया गया।

Downloaded From www.studymasterofficial.com

11. पर्यावरण से संबंधित प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय संगठन

आई.यू.सी.एन. को वर्ल्ड कन्जर्वेशन यूनियन के नाम से भी जाना जाता है। इसकी स्थापना अक्टूबर, 1948 में हुई है। आई.यू.सी.एन. विश्व का सबसे बड़ा वैश्विक पर्यावरण नेटवर्क है तथा इसका मुख्यालय स्विट्जरलैंड के 'ग्लाण्ड' में स्थित है। आई.यू.सी.एन. के अंतर्गत सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों दोनों के सदस्य सम्मिलित होते हैं इसमें 200 से ज्यादा सरकारी और 1000 से ज्यादा गैर-सरकारी संगठनों के सदस्य है। यह एकमात्र ऐसा अंतर्राष्ट्रीय संगठन है जिसे संयुक्त राष्ट्र महासभा का 'पर्यवेक्षक दर्जा' प्राप्त है। इस तरह यह संयुक्त राष्ट्र का सदस्य नहीं है। आईयूसीएन के अंतर्गत जैव-विविधता के संरक्षण के साथ-साथ पौधों एवं जीव-जन्तुओं के लुप्त होने से रोकना है। साथ ही, उनके आवास क्षेत्रों को नष्ट होने से बचाना है। आईयूसीएन जैव-विविधता के साथ-साथ अन्य क्षेत्रों में भी कार्य करता है, उस क्षेत्र के अंतर्गत जलवायु परिवर्तन, अजीविका, हरित अर्थव्यवस्था, संपोषणीय ऊर्जा आदि आते हैं।

वर्ल्ड वाइल्ड फंड (WWF)

WWF एक अंतर्राष्ट्रीय गैर-सरकारी संगठन है, जिसकी स्थापना वर्ष 1961 में की गई थी। इसका उद्देश्य वन्यजीव संरक्षण के साथ मानव क्रियाकलापों से पर्यावरण को होने वाली क्षति को कम करना है। इस संस्था के अंतर्गत 100 से अधिक देश पर्यावरण के उत्थान के लिए कार्यरत है। इसका मुख्यालय ग्लाण्ड (स्विट्जरलैंड) में स्थित है तथा इसका प्रतीक चिन्ह (Logo) 'काला पांडा' है।

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP)

UNEP संयुक्त राष्ट्र की एक एजेंसी है जिसकी स्थापना स्टॉकहोम (स्वीडन) में हुए कान्फ्रेंस 1972 के परिणामस्वरूप हुआ था। यह पर्यावरण निरीक्षण और परीक्षण के लिए अंतर-सरकारी तरीकों के समन्वय के लिए जिम्मेदार है। इसका गठन विभिन्न पर्यावरण कार्यक्रम और संगठनों के प्रबंधन के लिए अंतर्राष्ट्रीय रूपरेखा तैयार करना है। वर्ष 1988 में UNEP तथा विश्व मौसम विभाग को मिलाकर (IPCC) का गठन किया गया। स्टाकहोम सम्मेलन 1972 के अंतर्गत 5 जून को मनाए जाने वाला विश्व पर्यावरण दिवस कार्यक्रम का निर्णय लिया गया है। पर्यावरण संबंधित कार्यक्रमों को बढ़ावा देने वाले संगठनों हेतु ग्लोबल-500 पुरस्कार (1987) की स्थापना की गई है। इसका मुख्यालय केन्या की राजधानी नैरोबी में स्थित है।

अंतर्राष्ट्रीय उष्णकटिबंधीय काष्ठ संगठन (ITTO)

यह एक अंतर सरकारी संगठन है जिसकी स्थापना संयुक्त राष्ट्र के अंतर्गत 1986 में हुई है। यह एक अनोखा संगठन है। इसके अंतर्गत एक और उष्णकटिबंधीय वन संरक्षण एवं सतत् प्रबंधन, उद्योग एवं व्यापार से संबंध है तो दूसरी तरफ पर्यावरणीय समस्याएं भी इसके वृत्त में शामिल है और उन्हें स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार इन नीतियों को लागू करने का प्रयास करता है। यह उष्णकटिबंधीय वन उत्पादों के साथ व्यापार से संबंधित आंकडों का एकत्रण एवं विश्लेषण कर उसे प्रचारित करता है। साइट्स और जैव विविधता अभिसमय, ITTO के साथ संयुक्त कार्यक्रम आयोजित करता है जिससे जैव-विविधता संरक्षण और संकटग्रस्त प्रजातियों को अवैध व्यापार से बचाया जा सके। इसके अंतर्गत 35 उत्पादक सदस्य एवं 38 उपभोक्ता सदस्य के साथ कुल 73 सदस्य देश है जिसमें से 10 उत्पादक सदस्य देश एशिया-प्रशांत से है जिनमें भारत भी शामिल है।

वन्य जीव व्यापार निगरानी नेटवर्क: ट्रैफिक (The Wild Life Trade Monitoring Network: TRAFFIC)

यह एक गैर सरकारी वैश्विक नेटवर्क है जो वन्यजीवों तथा वनस्पतियों के व्यापार पर निगरानी रखता है तथा उचित प्रबंधन पर बल देता है जिससे जैव-विविधता संरक्षण के साथ सतत् विकास के लक्ष्यों को हासिल किया जा सके। साइट्स की स्थापना के लगभग एक साल बाद ट्रैफिक की स्थापना शामिल की गई। यह आईयूसीएन और डब्लू-डब्लू एफ का संयुक्त कार्यक्रम है। वर्तमान स्थिति में यह दुनिया का सबसे बड़ा वन्य जीव व्यापार निगरानी तंत्र बन गया है। ट्रैफिक का वन्यजीव संरक्षण से मिलने वाले सतत् कामों में वृद्धि करने के साथ, जैव-विविधता एवं वन्यजीवों के अवैध और गैर-सम्पोषणीय व्यापार को कम करने हेतु '2020 लक्ष्य' रखा है इसका मुख्यालय कैम्ब्रिज (UK) में स्थित है।

साइट्स (CITIES)

इसकी स्थापना वाशिंगटन कन्वेंशन के दौरान की गई थी अत: इसे वाशिंगटन कन्वेंशन भी कहा जाता है। साइट्स एक अंतर्राष्ट्रीय समझौता है जो वन्यजीव और वनस्पतियों की लुप्तप्राय प्रजातियों हेतु संरक्षण का प्रावधान करता है। इसके अंतर्गत 103 सदस्य देश शामिल है। भारत (1976) में 'साइट्स' में शामिल हुआ था। हाल ही में ओशीनिया महाद्वीप का टोंगा (Tonga) नामक देश ने (2016) में 183वें सदस्य के रूप में साइट्स में सम्मिलित किया गया है। साइट्स के अंतर्गत प्रजातियों की तीन परिशिष्टों को शामिल किया गया है-

- **परिशिष्ट-1:-** इसके अंतर्गत उन प्रजातियों को शामिल किया गया है जो अस्तित्व में अत्यधिक संकटग्रस्त है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com

विश्व की लगभग 630 जन्तु प्रजातियाँ एवं 301 पादक प्रजातियाँ इस परिशिष्ट के अंतर्गत शामिल हैं। इसके अंतर्गत जीवों का अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पूर्ण रूप से प्रतिबंधित है।

- **परिशिष्ट-2:-** इस परिशिष्ट के अंतर्गत उन प्रजातियों का समूह शामिल है जो आवश्यक रूप से संकटाग्रस्त स्थिति में तो नहीं है लेकिन उनको असंगत उपयोग से बचाने हेतु व्यापार को नियन्त्रित किया जाता है, इसमें विनियमन के साथ व्यापार की अनुमति प्रदान की जाती है। विश्व की लगभग 4827 जन्तु प्रजातियाँ एवं 29592 पादप प्रजातियों को इस परिशिष्ट में शामिल किया जा चुका है।
- **परिशिष्ट-3:-** इस परिशिष्ट के अंतर्गत उन प्रजातियों को शामिल किया जाता है जो किसी एक देश द्वारा संरक्षित होता है तथा उस देश द्वारा किसी साइट्स सहयोगी व्यापार नियंत्रण हेतु मांग रखता है। इसमें भी विनियमन के साथ अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की अनुमति दी जाती है। इसके अंतर्गत विश्व की लगभग 135 जन्तु प्रजातियाँ एवं 12 पादक प्रजातियों को शामिल किया गया है।

यूनाइटेड नेशन फोरम ऑन फोरेस्ट (UNFF)

इस संगठन का मुख्य उद्देश्य वनों के संरक्षण, प्रबंधन के साथ सतत् विकास को बढ़ावा देना है। इसकी स्थापना 2000 में, संयुक्त राष्ट्र की आर्थिक सामाजिक परिषद् (ECOSOC) के द्वारा एक सहायक निकाय के रूप में किया गया है। यह एक सार्वभौमिक सदस्यता वाला मंच है जिसमें संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्य सम्मिलित है।

इसके अंतर्गत कुछ महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों को दर्शाया गया है जो निम्नवत है:-

- सतत् वन प्रबंधन हेतु राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय सहयोग प्राप्त करना।
- सतत् विकास पर जोहांसबर्ग घोषणापत्र और सतत् विकास लक्ष्य की प्राप्ति में वनों की भागीदारी को बढ़ावा देना।
- वन संबंधित नीतियों एवं कार्यक्रमों के समन्वय को बढ़ावा देना।
- वन संरक्षण मुद्दों को सरकारी एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बढ़ावा देना तथा उसमें होने वाली वृद्धि को प्रोत्साहित करना।
- आरंभ में UNFF का सम्मेलन वार्षिक तौर पर छोटा था तथा 2001 में पहला सम्मेलन तथा 2007 में सातवाँ सम्मेलन हुआ। इसके बाद UNFF का सम्मेलन आयोजित किया गया है जिसके अंतर्गत वन संरक्षण एवं प्रबंधन की रूपरेखा को निरूपित किया गया है, इसके अंतर्गत राष्ट्रों ने सतत् वन प्रबंधन से संबंधित अंतर्राष्ट्रीय समझौते पर सहमति जताई है तथा वनों के निजीकरण को रोककर सतत् सम्पोषणीय आजीविका को सुनिश्चित किया गया है जो कि वन आश्रित समुदाय के गरीबी को कम करने में सहायक है।

वर्ल्ड वॉच इंस्टीटयूट (WWI)

यह एक स्वतंत्र शोध संस्था है जिसकी स्थापना लेस्टर आर. ब्राउन द्वारा 1974 में की गई। यह न केवल पर्यावरण संबंधित समस्याओं की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करता है बल्कि उसका व्यावहारिक निदान भी करता है जिसके अंतर्गत सतत् विकास के लक्ष्यों को साकार करने हेतु हर संभव प्रयास शामिल है।

सतत् विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने में इस संस्था ने निम्नलिखित कार्यक्रमों को जारी किया है।

जलवायु और ऊर्जा

ऊर्जा की बढ़ती कीमतों तथा जलवायु परिवर्तन के प्रति जल चिंताओं ने परंपरागत ऊर्जा स्रोतों के परिवर्तन की स्थिति पैदा कर दी। इस संस्था के अंतर्गत कम कार्बन उत्सर्जन हेतु कई नवीकरणीय ऊर्जा एजेंसियों का संचालन किया जा रहा है।

खाद्य और कृषि

वर्ल्ड वॉच इंस्टीट्यूट द्वारा खाद्य और कृषि कार्यक्रम को प्रोत्साहन दिया गया है जो किसानों और उपभोक्ताओं के साथ-साथ परितन्त्रों के संपोषणीय विकास में सहायक है तथा बढ़ती जलवायु से जनता के प्रति उत्पन्न समस्याओं से निपटने में सहायक है।

पर्यावरण एवं समाज

वर्ल्ड वॉच संस्था के अनुसार 'पृथ्वी की जलवायु और वातावरण के दुष्प्रभाव का मुख्य कारण हमारे समाज एवं संस्कृति की पर्यावरण के प्रति अवैज्ञानिक सोच की अवधारणा है अत: इस संस्था के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण से संबंधित समस्त संस्थाओं को सक्षम बनाने तथा सतत् विकास के लक्ष्यों को शामिल करने हेतु प्रोत्साहन दिया जाता है।

वर्ल्ड रिसोंसेज इंस्टीट्यूट

यह एक स्वतंत्र वैश्विक गैर-सरकारी संस्था है जिसकी स्थापना वर्ष 1982 में की गई। यह एक ऐसी संस्था है जिसका उद्देश्य मानवीय जीवन को सुरक्षित करने के साथ उनमें बदलते पर्यावरण के धारणीय विकास को बढ़ावा देना है। यह संस्था उन आंकड़ों के संग्रहण, शोध तथा उन रणनीतियों की माप करती है जो लोगों द्वारा एक स्वच्छ पर्यावरण के निर्माण में सहायक है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

इसके अंतर्गत ऐसे 6 महत्त्वपूर्ण लक्ष्यों को निर्धारण किया गया है जो सतत् विकास के लक्ष्यों को हासिल करने में सहायक है।

जलवायु (CLIMATE)

बढ़ती ग्रीन हाऊस गैस के उत्सर्जन से आज विश्व संकट के जाल में फँसता जा रहा है। ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन से उत्पन्न संकटों से जीव-समुदाय एवं पेड़ पौधों (परितंत्रों) की रक्षा करने के साथ-साथ निम्न कार्बन अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसर करना इसका लक्ष्य है।

ऊर्जा (Energy)

एक सतत् समाज के अंतर्गत आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए स्वच्छ वाहनीय ऊर्जा की आवश्यकता होती है।

भोजन (Food)

पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव डालते हुए वर्ष 2050 तक 3.7 अरब जनसंख्या के लिए भोजन की उपलब्धता को सुनिश्चित करना।

वन (Forest)

जैव-विविधता और खाद्य सुरक्षा में वृद्धि तथा जलवायु परिवर्तन के प्रभाव में कमी, गरीबी में कमी के साथ-साथ वनों के क्षरण को कम करना तथा वनों की उत्पादकता में वृद्धि करना।

जल (Water)

वैश्विक जल जोखिम को कम रखते हुए जल संसाधनों की सुरक्षा को बढ़ावा देना।

संपोषणीय शहर (Sustainable Cities)

शहरों में जीवन की अनुकूल परिस्थितियों के समन्वयन हेतु, पर्यावरणीय सामाजिक और आर्थिक रूप से सतत् शहरीकरण को बढ़ावा देना।

बेसल कन्वेंशन (Basel Conevention)

बेसल संधि एक अंतर्राष्ट्रीय संधि है जिसे 22 मार्च, 1989 में स्वीकृति प्रदान की गई तथा यह मई, 1992 से प्रभाव में आई। बेसल कन्वेंशन के अंतर्गत हानिकारक ठोस अपशिष्टों, पदार्थों के सीमापार स्थानांतरण के नियंत्रण तथा अपशिष्ट पदार्थों के समाधान हेतु प्रावधान है। यह संधि विकसित देशों से विकासशील देशों व कम विकसित देशों के मध्य हानिकारक अपशिष्टों के स्थानांतरण पर प्रतिबंध लगाता है भारत द्वारा इसे 15 मार्च, 1980 को हस्ताक्षर 22 सितंबर, 1992 को लागू किया गया।

लक्ष्य:

बेसल कंवेशन पर 186 देशों ने भागीदारी जताई है पर अमेरिका जैसे देश ने इस पर हस्ताक्षर तो कर दिए है पर इसे लागू नहीं किया है। बेसल संधि के तहत कुछ महत्त्वपूर्ण लक्ष्य प्राप्ति के प्रावधान है:-

- अपशिष्टों के स्थानान्तरण हेतु एक नियामक प्रणाली अपनाई जानी चाहिए।
- अपशिष्ट निपटान प्रबंधन को बढ़ावा देना तथा खतरनाक अपशिष्टों के स्थानांतरण को रोकना।
- पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देना।

कुछ हानिकारक अपशिष्ट

- खान अपशिष्ट।
- ई. कचरा, जहाज।
- औद्योगिक कचरा आदि।
- कृषि कचरा।

रॉटरडम कन्वेंशन

इस संधि को 10 सितंबर 1998 को अपनाया गया था तथा 24 फरवरी, 2004 से लागू किया गया। वर्ष 2017 तक 157 सदस्य इस कन्वेंशन में सम्मिलित है। इस संधि द्वारा पूर्व सूचित सहमति (PIC) प्रक्रिया के क्रियान्वयन के लिए कानूनी रूप से बाध्यकारी दायित्वों को पैदा करता है। इस प्रक्रिया को UNEP तथा FAO द्वारा शुरू किया गया था तथा वर्ष 2006 में स्थापित किया गया है।

इस कन्वेंशन के कुछ महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है:-

- पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने तथा मानव स्वास्थ को प्रभावित करने वाले हानिकारक रसायनों पर प्रतिबंध स्थापित करना।
- खतरनाक रसायनों के आयात निर्यात पर एक राष्ट्रीय प्रक्रिया को अपनाना।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

12. ई-अपशिष्ट (E-Waste)

ई-अपशिष्ट प्रदूषण को उस प्रदूषण के रूप में परिभाषित किया गया है जो विद्युत उपकरणों को उनके जीवन काल के पश्चात् कचरा बनाकर पर्यावरण में फेंक दिए जाते हैं। यह पर्यावरण में एकत्रित होकर मनुष्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। इस कचरे को 3 वर्गों में बांटा जाता है-

E-Waste

भूरे पदार्थ (Brown goods)	सफेद पदार्थ White goods	लेटी पदार्थ (Grey goods)
Ex: फ्रिज, वाशिंग मशीन, डिश वॉशर आदि	Ex. T.V., Camera आदि	Ex. Computer Printer, Scanner, Mobile आदि

ई-अपशिष्ट में 60% धातु (लोहा, तांबा, एल्युमीनियम आदि), 30% प्लास्टिक तथा 2.7% खतरनाक (सीसा, कैडमियम, पारा, आर्सेनिक आदि) होते हैं। यह Non-biodegradable हैं जो खाद्य श्रृंखला के माध्यम से पारिस्थितिकी तंत्र में प्रवेश कर जाते हैं। E-Waste का अधिकार निर्माण विकसित देशों द्वारा किया जाता है। विकसित देश अपने E-Waste को विकासशील एवं अविकसित देशों में स्थानांतरित कर देते हैं। तेजी से विकसित होने वाली प्रौद्योगिकी के संदर्भ में 'use and throw' की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है जिससे E-waste की समस्या प्रतिदिन और जटिल होती जा रही है। UN (संयुक्त राष्ट्र) के अनुमान के अनुसार पूरे विश्व में लगभग 50 मिलियन टन E-Waste प्रतिवर्ष हो रहा है।

- भारत में इलेक्ट्रॉनिक उद्योग की शुरुआत 1960 के दशक में हुई। यहाँ सस्ते कुशल श्रम एवं कच्चे माल, इंजीनियरिंग दक्षता तथा बहुत बड़े बाजार के कारण यह उद्योग काफी विकसित हुआ है। कम्प्यूटर की बिक्री में पिछले 6 वर्षों में 400% की वृद्धि हुई है। भारत मोबाइल का सबसे बड़ा उपभोक्ता बनता जा रहा है। यहाँ 90% मोबाइल आयात किए जाते हैं जिससे लगभग 10% E-Waste प्रतिवर्ष बढ़ रहा है। ASSOCHAM की रिपोर्ट के अनुसार भारत के केवल 10 राज्यों का E-Waste उत्पादन में महाराष्ट्र प्रथम स्थान तथा तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश का स्थान क्रमशः है। शहरों में प्रथम स्थान पर मुम्बई तथा दिल्ली व बेंगलुरु क्रमशः सर्वाधिक E-Waste आयातक देश हैं। यदि क्षेत्र की दृष्टि से देखा जाए तो भारत में कुल E-Waste में सरकारी एवं निजी औद्योगिक क्षेत्र की भागीदारी 70%, घरेलू आवासीय क्षेत्र की हिस्सेदारी 15% तथा शेष विनिर्माण क्षेत्र की है।

<u>E-Waste के प्रभाव</u>

1. E-Waste के जहरीले तत्व रिस कर जमीन के नीचे चले जाते हैं या वायु में प्रवेश करते हैं जिससे पर्यावरण प्रदूषित होता है।
2. Electric Product को जलाने पर उनमें से सीसा, कैडमियम, पारा जैसी भारी धातुएँ निकलती हैं। पारा मछली के माध्यम से हमारे खाद्य श्रृंखला में प्रवेश करता है।
   - **सीसा (LED)**- यह किडनी व दिमाग पर प्रभाव डालता है तथा इससे जनन क्षमता (गर्भारणधारण) में कमी आती है।
   - **पारा (Mercury)**- यह केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र एवं किडनी को क्षतिग्रस्त करता है। इससे 'मिनीमात' रोग होता है। यह भूमिगत जल को प्रदूषित करते हैं।
   - **कैडमियम (Cadmium)**- यह किडनी को क्षतिग्रस्त करता है तथा हड्डियों को कमजोर करता है।
3. Computer के Monitor के Cathod ray tube में Cadmium नामक पदार्थ होता है।
4. Computer में बहुत से प्लास्टिक के उपकरण होते हैं जिनमें पॉलीविनाइल क्लोराइड (PVC) होता है जलाने या दफनाने पर ये PVC, हाइड्रोजन क्लोराइड गैस उत्पन्न करते हैं जो जल के साथ मिलकर HCL बनाते हैं। यह मानव में प्रजनन शक्ति तथा बीमारियों से प्रतिरक्षण क्षमता कम कर देता है।
5. Brominated Flame Retardants (BFR's) का प्रयोग Circuit Board बनाने एवं प्लास्टिक उपकरण बनाने में किया जाता है। ये आसानी से विखण्डित नहीं होते, यह मस्तिष्क पर प्रभाव डालते हैं, सीखने एवं स्मरण की क्षमता प्रभावित करते हैं, थाइरॉइड तथा हार्मोन सिस्टम को प्रभावित करते हैं।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
Committed to Excellence

E-Waste का प्रबंधन

Land filling ठोस अपशिष्ट निपटान के समान	दहन (Incineration)	Recycle/Reuse

E-Waste से निपटने के लिए अंतर्राष्ट्रीय प्रयास-

Basel Convention- बेसल (Switzerland) में यह कानून मार्च, 1989 के Convention में पारित हुआ और मई, 1992 में लागू हुआ। इसके अनुसार एक देश द्वारा दूसरे देश में E-Waste फेंकना अन्तर्राष्ट्रीय कानून के विरुद्ध है। अभी तक अमेरिका द्वारा इसकी अभिपुष्टि नहीं की गई है। दिसंबर, 2001में बेसल एक्शन नेटवर्क ने चीन के ग्वांगडोंग राज्य में गुइयू (Guiyu) को E-Waste का मुख्य केन्द्र माना था अर्थात विश्व में इलेक्ट्रानिक्स का कब्रिस्तान माना था।

E-Waste से निपटने के लिए भारत के प्रयास-

- भारत ने सर्वप्रथम Environment Protection Act of 1986 के अंतर्गत ई-अपशिष्ट (प्रबंधन एवं हैंडलिंग) नियम, 2011 लागू किया। जोकि समस्त उत्पादकों, विक्रेताओं, उपभोक्ताओं एवं चक्रणकर्ताओं पर लागू होता है। इसमें विस्तृत उत्पादक जिम्मेदारी (EPR) कानून के तहत उत्पादकों द्वारा उत्पन्न किए गए E-Waste को निश्चित स्थान पर एकत्र कर उनका उचित निपटान करना उत्पादकों का उत्तरदायित्व है। E-Waste का चक्रण (Recyling) प्रदूषण कण्ट्रोल बोर्ड या प्रदूषण कण्ट्रोल कमेटी को दोषियों के विरुद्ध Environment Protection Act, 1986 के तहत कार्यवाही करने का अधिकार।
- पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय ने ई-अपशिष्ट (प्रबंधन एवं हैंडलिंग) नियम, 2011 के स्थान पर ई-अपशिष्ट (प्रबंधन) नियम, 2016 लागू किया जिसके तहत-

  1. 2016 के नियम की अनुसूची-1 के तहत इसमें Compact florosent Lamp (CFL) तथा पारा वाले अन्य Lamp और ऐसे उपकरणों को भी शामिल किया गया।
  2. केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड पूरे देश में एकल प्राधिकार देगा।
  3. E-Waste नष्ट करने तथा पुर्नचक्रण करने के काम में शामिल श्रमिकों की सुरक्षा, स्वास्थ्य तथा कौशल विकास सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी राज्य सरकार की है।
  4. नियमों के उल्लंघन पर दण्ड का प्रावधान किया गया।

भारतीय वन (संशोधन) अध्यादेश, 2017

- केन्द्र सरकार ने ऐतिहासिक पहल में भारतीय वन (संशोधन) अध्यादेश, 2017 को 26 दिसंबर, 2017 में राज्य सभा द्वारा भी इसे पारित कर दिया गया। जिससे अब गैर वन क्षेत्रों में उगाए गए बांस को वृक्ष की परिभाषा के दायरे में लाए जाने से छूट मिली और इस प्रकार इसके आर्थिक उपयोग के लिए गिराने या पारगमन परमिट की आवश्यकता से छूट मिल गयी। केन्द्रीय मंत्रिमण्डल ने इसके लिए भारतीय वन अधिनियम, 1927 के खण्ड 2(7) में संशोधन कर अध्यादेश जारी किया।
- इसमें गैर वन भूमि पर बांस के वृक्षारोपण और रोजगार को बढ़ावा मिलेगा तथा गांव व छोटे शहरों में लघु व मध्यम उद्योगों के विकास को प्रोत्साहित किया जा सकेगा और आयात पर निर्भरता कम होगी। हालांकि वन क्षेत्र में उगाए गए बांस को वन संरक्षण अधिनियम, 1980 के प्रावधानों द्वारा प्रशासित किया जायेगा।
- सरकार गैर वन क्षेत्रों में बांस वृक्षारोपण को प्रोत्साहित कर वर्ष 2022 तक किसानों की आय को दोगुना करने और देश में हरित आवरण को बढ़ाने के दोहरे उद्देश्य को प्राप्त करना चाहती है।

संशोधन क्यों?

- वर्गीकरण विज्ञान (Taxonomy) के तहत घास के रूप में वर्गीकृत किया गया है। लेकिन 1927 के अधिनियम में बांस को पेड की परिभाषा में शामिल करने से इसके लिए पारगमन परमिट की आवश्यकता होती थी भले ही निजी भूमि पर उगाया गया हो।
- किसानों द्वारा कई प्रतिबंधात्मक विनियामक प्रावधानों जैसे कटाई, पारगमन और प्रसंस्करण के लिए अनुमति की आवश्यकता, निर्यात प्रतिबंध, उत्पादन पर रॉयल्टी एवं पारगमन शुल्क के कारण इस क्षेत्र की पूरी क्षमताओं का उपयोग संभव नहीं हो

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

सका है। हालांकि कई राज्यों ने किसानों को कुछ राहत देते हुए बांस की अलग-अलग प्रजातियों के लिए पारगमन और कटाई की छूट दी थी। लेकिन बांस को एक राज्य से दूसरे राज्य में ले जाने के लिए परमिट की आवश्यकता होती थी।

- वन अधिकार अधिनियम, 2006 में बांस को गैर इमारती लकड़ी के रूप में वर्गीकृत किया गया है। इस संशोधन से यह विसंगति दूर हुई।

संशोधन से लाभ

- बांस की कृषि के मामले में भारत के पास कुल वैश्विक क्षेत्र का 19% भाग है लेकिन वैश्विक बाजार में भारत का हिस्सा 6% है। वर्तमान समय में भारत में बांस की मांग 28 मिलियन टन है जिसे भारत बड़ी मात्रा में चीन व वियतनाम से आयात करता है। लेकिन अब भारत की आयात पर निर्भरता कम होगी।
- भारत का उत्तर-पूर्वी क्षेत्र बांस उत्पादन में काफी समृद्ध है। यह क्षेत्र देश का 65% व विश्व का 20% बांस का उत्पादन करता है। संयुक्त राष्ट्र औद्योगिक विकास संगठन (UNIDO) के अनुसार इस क्षेत्र से अगले 10 वर्षों में रु. 5000 करोड़ के मूल्य के कारोबार की संभावनाएँ यहां से है। अत: यह संशोधन उत्तर-पूर्व व मध्य भारत के किसानों, आदिवासियों की कृषि आय को बढ़ाने में मील का पत्थर सिद्ध होगा।
- यह किसानों और अन्य व्यक्तियों को कृषि भूमि और अन्य निजी भूमि पर वृक्षारोपण के अलावा, बेकार पड़ी भूमि पर उपयुक्त बांस प्रजातियों के बागानों के विकास को प्रोत्साहित करेगा। भारत की व्यर्थ 12.6 मिलियन हेक्टेयर भूमि में बांस की खेती अब एक व्यवहार्य विकल्प सिद्ध हो सकता है।
- यह संशोधन राष्ट्रीय बांस मिशन की सफलता में सहायता करेगा।

अध्यादेश में कमियाँ

- इसमें निजी तौर पर उगाए बांस और वन में उगने वाले बांस के बीच अंतर का कोई प्रावधान नहीं है। इसके अलावा वन अधिनियम में 'वन' को परिभाषित नहीं किया गया है, इस कारण 'वन क्या है' के निर्धारण में न्यायपालिका की भूमिका बढ़ जायेगी।
- वनों के बाहर के बांस के लिए पारगमन परमिट देने के लिए ग्रामसभा को अधिकृत किए जाने के प्रावधान का सावधानीपूर्वक क्रियान्वयन करने की आवश्यकता है ताकि इनका दुरुपयोग न किया जा सके।
- इसके क्रियान्वयन में जनजातीय लोगों और वनवासियों के अधिकारों को सुरक्षित रखना एक बड़ी चुनौती होगी।
- भारत में वनों पर बने कानून एक औपनिवेशिक और जटिल विरासत हैं। इन कानूनों को समकालीन परिस्थितियों के अनुरूप बनाने की आवश्यकता है ताकि उपलब्ध वन संपदा का कुशल व दक्ष तरीके से प्रयोग किया जा सके।

राष्ट्रीय बांस मिशन

- बांस की आर्थिक क्षमताओं का दोहन करने के उद्देश्य से कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय के कृषि और सहकारिता विभाग द्वारा वर्ष 2006 में राष्ट्रीय बांस मिशन शुरू किया गया।
- इसे भारत सरकार द्वारा 100% केन्द्र प्रायोजित योजना के रूप में शुरु की गई बागवानी के संभावित विकास के लिए मिशन की उपयोजना के रूप में कार्यान्वित किया जा रहा है।
- जुलाई, 2017 में राष्ट्रीय बांस मिशन का नाम बदलकर 'राष्ट्रीय कृषि वानिकी और बांस मिशन' कर दिया गया।
- भारत में वन क्षेत्र का 13% हिस्सा बांस के अन्तर्गत है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

13. आर्द्रभूमि वर्गीकरण

संयुक्त राष्ट्र रामसर संधि के अनुसार आर्द्रभूमि- दलदल, फेन, दलदली भूमि या पानी के प्राकृतिक, कृत्रिम स्थायी या अस्थायी क्षेत्र जहां पानी स्थिर या प्रावहमान, कृत्रिम स्थायी या अस्थायी क्षेत्र जहां पानी स्थिर या प्रवाहमान, ताजा या खारा होता है। इनमें समुद्री जल के ऐसे क्षेत्र भी शामिल हैं जो निम्न ज्वार की गहराई पर होते हैं। और इनकी गहराई 6 मी. से अधिक नहीं होती।

- अंतस्थलीय आर्द्रभूमि (प्राकृतिक)- 43.40%
- अंतस्थलीय आर्द्रभूमि (मानव निर्मित)- 25.83%
- भारत में कुल आर्द्रभूमि क्षेत्रफल- 15.26 लाख हेक्टेअर
- भारत में कुल आर्द्रभूमि % में- 4.63

आर्द्रभूमि का महत्व

- आर्द्रभूमि सर्वाधिक विविध और उत्पादक पारितंत्रों में से है और इनकी तुलना वर्षा वनों और प्रवाल भित्तियों से की जाती है। आर्द्रभूमि के अन्तर्गत विस्तृत खाद्य जाल, समृद्ध जैव विविधता व अद्वितीय पर्यावास के कारण से इसे जैविक सुपर मार्केट (Biological Supermarket) भी कहा जाता है।
- आर्द्रभूमि कार्बन सिंक होते हैं और ये जल, नाइट्रोजन और सल्फर चक्रों को नियमित करने में सहायक होते हैं। प्रदूषित जल को साफ करते हैं, बाढ़ को रोकते हैं, तटरेखाओं की रक्षा करते हैं। जल भण्डारों का पुनर्भरण करते हैं इसलिए आर्द्रभूमियों को स्थलाकृति के गुर्दे (Landscope of Kidney) भी कहा जाता है।

तटीय आर्द्रभूमि

तटीय आर्द्रभूमि महासागर को 1% से भी कम भाग पर पायी जाती लेकिन ये समुद्री संस्तर के कार्बन भण्डारों का 50% से अधिक संचय करते हैं। ये एकमात्र ऐसे पर्यावास हैं जो लाखों वर्षों से निरंतर कार्बन को मिट्टी में भण्डारित कर रहे हैं। भारत में कुल आर्द्रभूमि क्षेत्र का तटीय आर्द्रभूमि (प्राकृतिक) 24.27% तथा मानव निर्मित तटीय आर्द्रभूमि 2.86% है।

आर्द्रभूमि वर्गीकरण

अंत:स्थलीय आर्द्रभूमि (झील, तालाब, डेल्टा, कच्छ आदि)   समुद्री/तटीय आर्द्रभूमि (एश्चुअरी, लैगून, मैंग्रोव, तट, कोरल रीफ आदि)

दलदल (Bog) व फेन (Fen) - दलदल ऐसे क्षेत्र हैं जो जलमग्न मृदा में पाए जाते हैं, यह अम्लीय प्रकृति के होते हैं। ये वृक्षहीन या वृक्षयुक्त हो सकते हैं।

Fen- ऐसे जलीय क्षेत्र जहाँ जल की प्राप्ति वर्षा जल से न होकर भूमि जल से होता है। यह अम्लीय नहीं होते हैं।

आर्द्रभूमि के लिए चुनौतियाँ-

भारत और विश्व में आर्द्रभूमियों का अपक्षीणन हो रहा है क्योंकि-

1. शहरों में या उनके निकट स्थित आर्द्रभूमि सूखते जा रहे हैं और वहाँ आवासों, कालोनियों और उद्योगों का निर्माण हो रहा है।
2. आर्द्रभूमि को कृषि भूमि में भी बदलता जा रहा है।
3. आर्द्रभूमि औद्योगिक और घरेलू कचरे, कीटनाशक प्रवाह, ऑटोमोबाइल और कारखानों के अपशिष्ट इत्यादि द्वारा प्रदूषित हो रहे हैं।
4. आर्द्रभूमि बड़े बांधों के निर्माण द्वारा जल प्लवित हो चुके हैं।
5. प्रत्यक्ष निर्वनीकरण भी आर्द्रभूमियों को नुकसान पहुंचा रही है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
Committed to Excellence

आर्द्रभूमि संरक्षण के लिये अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास (रामसर सम्मेलन)

- वर्ष 1971 में, ईरान के शहर रामसर में प्रवासी जल पक्षियों के आर्द्रभूमि पर्यावास के अपक्षीणन तथा बढ़ती हुई तथा बढ़ती क्षति के बारे में चिंतित देशों और गैर सरकारी संगठनों की वार्ता के फलस्वरूप यह संधि अस्तित्व में आयी थी जोकि 1975 ई. में लागू हुई।
- इस संधि का लक्ष्य अभियान यह है कि सम्पूर्ण विश्व के सवंहनीय विकास को हासिल करने के लिए एक योगदान के रूप में स्थानीय व राष्ट्रीय कार्यवाहियों तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के माध्यम से सभी आर्द्रभूमि का संरक्षण और बुद्धिमत्ता पूर्वक उपयोग किया जाए।
- संधि में शामिल होते समय प्रत्येक देश को कम से कम एक आर्द्रभूमि स्थल को अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की आर्द्रभूमि सूची (रामसर सूची) में शामिल करने हेतु अपनी मान्यता देनी होती है। भारत वर्ष 1982 में इस संधि पर हस्ताक्षर किए तथा उस समय केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान (राजस्थान) व चिल्का झील (उड़ीसा) को अन्तर्राष्ट्रीय आर्द्रभूमि की सूची में शामिल किया गया। वर्तमान समय में इस सूची में भारत के 26 स्थल हैं।
- रामसर स्थल को 9 मानदण्डों के आधार पर मान्यता दी जाती है जिनमें से 8 जैव विविधता मानदण्ड हैं जिनसे यह पता चलता है कि संधि आर्द्रभूमि को दर्जा देने और बहाल करने में इस विविधता को बनाए रखने में कितना महत्व देती है।

मानट्रेक्स रिकार्ड (Montreaux Record)–

इसमें अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की उन आर्द्रभूमियों को सूचीबद्ध किया जाता है जिनमें मानवीय अतिक्रमण और पर्यावरण प्रदूषण के कारण पारिस्थितिकीय संकट उत्पन्न हो गया है। यह रामसर सम्मेलन के अन्तर्गत कार्य करता है। मान्ट्रेक्स रिकार्ड के स्थलों को केवल CoP (Conference of Parties) की सहमति से ही हटाया जा सकता है।

- वर्तमान में इस रिकार्ड में भारत के स्थल शामिल हैं–

  – केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान (राजस्थान), पानी की कमी व चारागाह की कमी के कारण शामिल किया गया (1990 में)

  – लोकटक झील (मणिपुर, 1993 में) वनोन्मूलन व प्रदूषण की समस्या के कारण।

  – चिल्का झील को भी वर्ष 1993 ई. में इस रिकार्ड में शामिल किया गया था। यहाँ गाद की समस्या बढ़ गई थी। सरकारी प्रयासों के फलस्वरूप इस स्थल को वर्ष 2002 में इस रिकार्ड से हटा लिया गया तथा रामसर संरक्षण पुरस्कार (2002 में) इसे मिला।

आर्द्रभूमि संरक्षण के लिए भारत सरकार के प्रयास–

भारत सरकार द्वारा वर्ष 1985-86 में राज्य सरकारों के साथ मिलकर राष्ट्रीय आर्द्रभूमि संरक्षण कार्यक्रम (National Wetland Conservation Programme-NWCP) चलाया गया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य भारत में स्थित आर्द्रभूमि के संरक्षण एवं प्रबंधन के लिए दिशा निर्देश देना, अतिआवश्यक आर्द्रभूमि के गहन संरक्षण के उपाय करना, कार्यक्रमों की निगरानी करना, आर्द्रभूमियों की एक सूची तैयार करना था।

- फरवरी, 2013 में भारत सरकार ने 'राष्ट्रीय झील संरक्षण योजना (2001 में) तथा 'राष्ट्रीय आर्द्रभूमि संरक्षण कार्यक्रम' (1985-86 में) के कार्यक्रम में एवं स्थलों में हो रहे परस्पर अतिक्रमण तथा दोहरे व्यय से बचने के लिए इन्हें समन्वित कर एक नई 'राष्ट्रीय जलीय पारिस्थितिक तंत्र संरक्षण योजना' (National Plan for Conservation of Aquatic Ecosystem-NPCA) प्रारंभ की। इस योजना में केन्द्र एवं राज्यों के बीच लागत भागेदारी 70:30 तथा केंद्र एवं पूर्वोत्तर राज्यों के बीच भागीदारी 90:10 के अनुपात में तय की गई।

आर्द्रभूमि (संरक्षण एवं प्रबंधन) नियमावली 2017

वर्ष 2017 में पर्यावरण, वन और जलवायु मंत्रालय द्वारा आर्द्रभूमि के संरक्षण से संबंधित नए नियमों को अधुसूचित किया गया। 2017 की यह नियमावली 2010 में लागू नियमावली का स्थान लेगी।

नए नियमावली के सकारात्मक पक्ष–

- नए नियमों में आर्द्रभूमि प्रबंधन के प्रति विकेन्द्रीकृत दृष्टिकोण अपनाया गया है। ताकि क्षेत्रीय विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके और राज्य अपनी प्राथमिकताओं को निर्धारित कर सके।

Downloaded From www.studymasterofficial.com

- ज्यादातर निर्णय राज्य के आर्द्रभूमि प्राधिकरण द्वारा लिए जायेंगे जिसकी निगरानी राष्ट्रीय आर्द्रभूमि समिति द्वारा की जायेगी। इस प्रकार की व्यवस्था सहकारी संघवाद की भावना को मजबूत करती है।

नए नियमावली में नकारात्मक पक्ष-

- 2010 के नियमों में आर्द्रभूमियों से संबंधित कुछ मानदण्डों को स्पष्ट किया गया था जैसे प्राकृतिक सौंदर्य, पारिस्थितिक संवेदनशीलता, आनुवंशिक विविधता ऐतिहासिक मूल्य आदि। लेकिन 2017 की नियमावली में इन बातों का उल्लेख नहीं है।
- आर्द्रभूमियों पर जारी गतिविधियों पर लगने वाला प्रतिबंध 'बुद्धिमत्ता पूर्ण उपयोग' के सिद्धांत के अनुसार किया जायेगा जो कि राज्य की आर्द्रभूमि प्राधिकरण द्वारा निर्धारित किया जाएगा।
- नए नियमों के तहत आर्द्रभूमि संरक्षण को हानि पहुंचाने वाले गतिविधि से बचाव के लिए ऐसे दिशा निर्देश जारी करने का अधिकार किसी भी प्राधिकरण को नहीं दिया गया है।

नोट-

1. विश्व आर्द्रभूमि दिवस प्रत्येक वर्ष 2 फरवरी को मनाया जाता है। पहली बार विश्व आर्द्रभूमि दिवस 1997 में मनाया गया।
2. जम्मू-कश्मीर में देश की सर्वाधिक आर्द्रभूमि (4) वुलर झील (भारत की सबसे बड़ी पानी की झील), सुरिन्सर मानेसर झील, सोमोरीटी झील, होकेरा आर्द्रभूमि हैं।
3. शीर्ष आर्द्रभूमि क्षेत्रफल वाला राज्य गुजरात है।
4. भारत का सबसे अधिक क्षेत्रफल वाला आर्द्रभूमि स्थल बेम्बनाड झील (केरल)।
5. भारत का सबसे कम क्षेत्रफल वाला आर्द्रभूमि स्थल रेणुका आर्द्रभूमि (हिमाचल प्रदेश) है।

सुन्दरबन भौगोलिक स्थिति

- यह भारत और बांग्लादेश दोनों में फैला हुआ दलदलीय वन क्षेत्र है। यहाँ पाए जाने वाले सुन्दरी नामक वृक्षों के कारण यह प्रसिद्ध है। यह भारत में पश्चिम बंगाल के उत्तर व दक्षिण 24 परगना जिले के 19 विकास खण्डों में फैला हुआ है।
- यह 9,630 वर्ग किमी में फैले गंगा-ब्रह्मपुत्र डेल्टा का हिस्सा है। इसमें 104 द्वीप हैं। भारतीय क्षेत्र में स्थित सुन्दरबन UNESCO के विश्व धरोहर स्थल का हिस्सा है। वर्ष 1973 में इसे टाइगर रिजर्व एवं वर्ष 1984 में इसे सुंदरबन राष्ट्रीय उद्यान घोषित किया गया था।
- सुंदरबन क्षेत्र के 2000 वर्ग किमी से भी अधिक क्षेत्र में मैंग्रोव वन एवं संकरी खाडिया पायी जाती है।
- 2017 की वन रिपोर्ट के अनुसार, भारतीय सुंदरबन संरक्षित वन क्षेत्र के 2,214 वर्ग किमी में मैंग्रोव वन फैले हुए हैं। यह देश के लगभग 43% मैंग्रोव वन क्षेत्र का हिस्सा है।
- जंगलों के अलावा यहाँ 100 रॉयल बंगाल बाघों के अधिवास, सुन्दरबन की खाड़ी और नदी प्रणाली भी आरक्षित वन भाग है। रामसर स्थल के रूप में मान्यता मिलने पर यह देश की सबसे बड़ी संरक्षित आर्द्रभूमि होगी।
- 1987 में एक अलग प्रकार की जैवविविधता के लिए सुन्दरबन की पहचान यूनेस्को के विश्व विरासत स्थल के रूप में की गई थी।
- जैविक विविधता के संरक्षण के लिए कुल क्षेत्रफल लगभग 1/3 भाग संरक्षित क्षेत्र के रूप में प्रयोग किया जाता है।
- यहाँ प्रचुर मात्रा में मछली और बायोमास संसाधन जैसे- लकड़ी, पल्पवुड, घोंघा, केकड़े, शहद और मछलियाँ पायी जाती है जिनका स्थानीय समुदाय द्वारा व्यवसायिक उपयोग किया जाता है।
- पोषक तत्व पुर्नचक्रण और प्रदूषण में कमी के लिए सुन्दरबन एक प्रमुख मार्ग है।
- यह डेल्टाई क्षेत्र 84 चिन्हित वनस्पतियों की प्रजातियों के साथ दुनिया के सबसे बड़े मैंग्रोव वन बेल्ट में शामिल है।
- यहाँ पाए जाने वाले कुछ जीवों में एशियाई छोटे पंख वाले ऊदबिलाव, गंगा डाल्फिन, भूरे व दलदली नेवले और जंगली रीसस बन्दर प्रमुख है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS World Committed to Excellence

लाभ-

- अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता के अलावा, रामसर टैग सुंदरवन को पर्यावरण पर्यटन हॉट-स्पॉट के रूप में बढ़ावा देने में मदद करेगा।
- यह बेहतर संरक्षण सुनिश्चित करेगा क्योंकि पारिस्थितिकी तंत्र या उसके व्यवहार में परिवर्तन के लिए किसी भी खतरे का अर्थ अन्तर्राष्ट्रीय बदनामी होगी।
- अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की आर्द्रभूमि की स्थिति प्रदान करना सुन्दरबन के लिए न केवल गर्व का विषय होगा, बल्कि यह क्षेत्र बहुत से अन्तर्राष्ट्रीय शोध एवं अध्ययन का भी विषय बन जाएगा।

वर्तमान स्थिति-

- वर्तमान में पूर्वी कोलकाता क्षेत्र में आर्द्रभूमियों पर बढ़ते अतिक्रमण के संबंध में पर्यावरण विशेषज्ञों द्वारा बहुत से सवाल उठाए गए हैं।
- पिछले 3 दशकों में जल निकायों के आर्द्रभूमि क्षेत्र के 125 वर्ग किमी से अधिक विस्तार क्षेत्र में कमी आयी है।
- इसके संरक्षण के लिए केवल इतना काफी नहीं है कि इसे अंतर्राष्ट्रीय महत्व का क्षेत्र घोषित किया जाए बल्कि जरुरी यह है कि इससे संबंधित प्राधिकरण द्वारा मौजूदा कानूनों और विनियमों के उचित क्रियान्वयन पर विशेष रूप से बल दिया जाना चाहिए।
- जलवायु परिवर्तन, समुद्री जल स्तर की वृद्धि के अलावा व्यापक स्तर पर हो रहे विनिर्माण कार्य, मत्स्यपालन के लिए मैंग्रोव वनों के समाशोधन आदि का सुन्दरबन क्षेत्र पर बहुत अधिक नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है।

Downloaded From www.studymasterofficial.com
GS WORLD Committed to Excellence

ये तस्वीरें महज छात्रों की संख्या को नहीं, बल्कि हमारे संस्थान पर उनके विश्वास को दर्शाती हैं...

Batch : 8:30 AM

Batch : 11:45 AM

Batch : 12:05 PM

Batch : 6:30 PM

अतुल शर्मा
SSP, प्रयागराज

GS World संस्थान के पास अनुभवी शिक्षक मंडल जिसमें प्रो. पुष्पेश पंत, मणिकांत सिंह, आलोक रंजन सर जैसे भारत के सर्वश्रेष्ठ मार्गदर्शक मौजूद हैं। अनुभवी शिक्षकों के साथ-साथ बेहतर कक्षा कार्यक्रम, लेखन शैली पर विशेष ध्यान, उत्तर-पुस्तिका का अच्छी तरह से मूल्यांकन, विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास के लिए समय-समय पर आयोजित परिचर्चाएं **GS World** संस्थान को सिविल सेवा अभ्यर्थियों के लिए सर्वश्रेष्ठ विकल्प बनाता है।

अजय साहनी
SSP, मेरठ

एक विद्यार्थी के लिए सिविल सेवा में अंतिम सफलता पाने के लिए सबसे महत्वपूर्ण तीन चीजें होती हैं- बेहतर अध्ययन सामग्री, अनुभवी शिक्षक एवं प्रबंधन का नजरिया विद्यार्थियों के हितोनुरूप हो। जब मैं **GS World** संस्थान को देखता हूँ तो इस बात से आश्वस्त हो जाता हूँ कि यहाँ पर एक अभ्यर्थी सिविल सेवा की संपूर्ण तैयारी कर सकता है। निजी तौर पर संस्थान के निदेशक नीरज सिंह के प्रशासनिक अनुभव से मैं भलीभांति परिचित हूँ। मेरे अनुसार **GS World** संस्थान एक अभ्यर्थी के लिए बेहतर विकल्प हो सकता है।

हेमंत सती
IAS

GS World संस्थान न केवल भावी आईएएस का निर्माण करता है, बल्कि यह एक छात्र के व्यक्तित्व निर्माण में भी सहायता करता है। सबसे बढ़कर इस संस्थान के गुरूजनों का व्यक्तिगत मार्गदर्शन निःसंदेह बेजोड़ है, जो अन्य कहीं उपलब्ध नहीं होता। इन मानकों पर देखें तो **GS World** सर्वश्रेष्ठ विकल्प है, क्योंकि पूरे भारत में सबसे बेहतर अध्यापकों की टीम संस्थान से जुड़ी हुई है। मैं एक बार पुनः जीएस वर्ल्ड की पूरी सहयोगी टीम को धन्यवाद देता हूं।

धवल जायसवाल
(IPS-UP Cader)

सफलता के लिए पढ़ने की सही रणनीति उतनी ही जरूरी है जितनी अध्ययन सामग्री और **GS World** एक ऐसा संस्थान है जहां पर अभ्यर्थी अध्ययन सामग्री के साथ-साथ उसे किस प्रकार जल्दी और अच्छे ढंग से पढ़े इसकी रणनीति भी सीखता है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण है, संस्थान द्वारा तैयार की गई NCERT पुस्तकों की अध्यायवार रणनीति। इसके अलावा **GS World** संस्थान को जो बात सबसे अलग बनाती है वह है विद्यार्थियों को मिलने वाला व्यक्तिगत मार्गदर्शन। इस प्रकार मेरा व्यक्तिगत अनुभव यही कहता है कि **GS World** सिविल सेवा की तैयारी करने वाले अभ्यर्थियों के लिए पूर्णतः समर्पित संस्थान है।

सौरभ सिंह
SDM
(UPPCS-2016)
Rank- 8th

मैं अपनी सफलता के लिए **GS World** संस्थान के सभी शिक्षकगण एवं पूरे प्रबंधन को बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूँ। एक विद्यार्थी के तौर पर **GS World** संस्थान में होने वाले कक्षा कार्यक्रम के साथ नियमित टेस्ट अभ्यास ने मेरी सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इसके लिए मैं **GS World** संस्थान को धन्यवाद देता हूँ।

नम्रता सिंह
SDM
(UPPCS-2016)
Rank- 9th

एक विद्यार्थी के तौर पर **GS World** संस्थान में होने वाले कक्षा कार्यक्रम के साथ नियमित टेस्ट एवं संस्थान द्वारा संचालित किए जा रहे टेस्ट सीरिज ने मेरी सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इसके लिए मैं **GS World** संस्थान को धन्यवाद देती हूँ।

GS World संस्थान द्वारा दिए जा रहे व्यक्तिगत मार्ग दर्शन एवं सही गाइडेंश किसी भी अन्य संस्थाओं से इसे अलग करती है।

UPPCS 2017

2 RANK
Anupam Mishra

8 RANK
Anurag Prasad

12 RANK
Anupam Kr. Mishra

13 RANK
Ankit Shukla

20 RANK
Jagmohan Gupta

Chandra Prakash Tiwari (Dy.SP)

Atul Kumar Pandey (Dy.SP)

Shiv Thakur (Dy.SP)

Ritesh Tripathi (Dy.SP)

Usman (Dy.SP)

Prashali Gangwar (Dy.SP)

Ashish Km. Yadav (Dy.SP)

Parmanand Kushwaha (Dy.SP)

Santosh Kumar Singh (Dy.SP)

Vijay Km. Chaudhary (Dy.SP)

Abhishek Patel (Dy.SP)

Amardeep Kumar Mourya (Dy.SP)

Shikha Sankhwar (Dy.SP)

Ravi Kumar (Dy.SP)

Raghu Raj (Dy.SP)

Deepshikha Singh (Dy.SP)

Amit Pratap Singh (Dy.SP)

Suryabali Maurya (Dy.SP)

And Many More

: 011-27658013, 7042772062/63

H.O. : 629, Ground Floor, Main Road, Mukherjee Nagar, Delhi-09!! Class Venue : Vardhman Plaza, Nehru Vihar

http://www.gsworldias.com http://www.facebook.com/gsworld1 : gsworldias@gmail.com

9654349902

Visit us our You Tube Channel GS World & Subscribe...

DELHI CENTRE
629, Ground Floor, Main Road, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-09
Ph.: 7042772062/63, 9868365322

ALLAHABAD CENTRE
GS World House, Stainly Road, Near Traffic Choraha, Allahabad
Ph.: 0532-2266079, 8726027579

LUCKNOW CENTRE
A-7, Sector-J, Puraniya Chauraha Aliganj, Lucknow
Ph.: 0522-4003197, 8756450894

Downloaded From www.studymasterofficial.com